विषयानुक्रमणिका

अध्याय	अध्याय के नाम	पृष्ठांक
	प्राकथन	०२
प्रथम	दलित शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थ	०६
द्वितीय	दलित चेतणा का विकास	२२
तृतीय	दलित चेतणा के प्रेरणा स्त्रोत	३८
चतुर्थ	समकालिन हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन	५१
	उपसंहार	११०
परिशिष्ट	संदर्भ ग्रंथ सूची	११८

प्राक्कथन

साहित्य ही एक ऐसा माध्यम है जो आनेवाले युग को नई चेतणा दे सकता है। युग की धडकन विविध समस्याएँ तथा युग बोध को सुक्ष्म और यथार्थ अंकन साहित्य में रेखांकित होता है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में दलित चित्रण समय समय पर हुआ है। उसी को शोध का आधार बनाकर उसी दिशा में शोध का प्रयास इस लघू शोध परियोजना में किया जा रहा है।

दलित विमर्श आज के युग का ज्वलंत प्रश्न है। वर्ण व्यवस्था से जाति-पाति भेदभाव, घृणा और हेय तथा अस्पृश्यता का जन्म हुआ। समाज के भीतर दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। मानसिक यातना-प्रताडना देने का कार्य हो रहा है। उसे दूर करना दलित साहित्य की भूमिका है महात्मा गौतम बुद्ध एवं ज्योतिबा फुले का दर्शन एवं डॉ. भिमराव अम्बेडकर का जीवन संघर्ष दलित साहित्य का वैचारिक आधार हैं। डॉ. अम्बेडकर का मत है सामाजिक मनुष्य व्यवस्था में सुधार लाए बगैर आर्थिक सुधार संभव नही हैं। आर्थिक कमजोरीके कारण दलित अपनी रोजी रोटी के लिए संघर्ष करता दुःख परेशानी अधःपतन और उपहास के साथ ही दरिद्रता का जीवन जीता है। यहाँ व्यक्ति का शोषण होता है। दलित साहित्य मनुष्य को केंद्र में मानता है मनुष्य को सम्यक क्रांति की ओर ले जाता है। दलित साहित्य में बेकार एवं विद्रोह अपने उपर लादी गयी अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध है। दलित समाज का उत्पीडन व शोषण आज भी संपूर्ण प्रदेश में जारी है। जिसने पुरे दलित समाज को राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से पंगू बना दिया है। आज भी दलित मजदूर की जिंदगी जी रहे हैं। सामाजिक व्यवस्था आज भी उनका उत्पीडन कर रही हैं।

हमारे देश का एक बहुत बडा वर्ग जिसे हम दलित वर्ग के नाम से जानते हैं रुढिवादिता के शिंकजे में हमेशा उलझा रहा। जिसका मुख्य कारण सामाजिक विसंगतियाँ, असमानताएं और उच्च वर्ग द्वारा उत्पन्न सामाजिक कट्टरपंथिता और सामाजिक अन्याय, जिस कारण से दलित वर्ग हमेशा गुलामगीरी का जीवन जीता रहा। दलितों को शोषन एवं अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाकर अपने आपको विकासोन्मुखी बनाना होगा, जिससे उनके जीवन में वास्तविकता एवं प्रामाणिकता आ सकें और वे सम्पूर्ण जीवन को यातनामयी अभिव्यक्ति से बचा सके। इसके

लिये आवश्यक है कि शोषणवादी संस्कृति में बदलाव हो। जिससे दलित अपने आपको निष्ठूर एंव नकारात्मक दासत्व की जिन्दगी से बचा सकें ओर वे एक सामान्य नागरिक बनकर राष्ट्रीय और सामाजिक एकता से जुडें, यही उनकी वास्तविक पहचान होगी।

दलितों को नवजागृत करना, उन्हें स्वतंत्रता समानता और बंधुत्व जैसी पराकाष्ठाओं पर केन्द्रीयभूत करना यह शोध का लक्ष्य है। जिससे दलित समाज दयनीय और शोचनीय स्थिति से निकलकर अपने जीवन को सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक बनाए। जिससे उनकी जीवन पद्धति समानता की श्रेणी में आ सके, मनुष्य के रूप में अपना जीवन जी सके। साहित्य हमें जीवन और जगत में जीना सिखाता है, इसलिए हम साहित्य से जुडे रहते हैं। हिंदी साहित्य विश्वविख्यात है, जिसमें कहानी, नाटक, उपन्यास, निंबध, आत्मकथा, डायरी, रेखाचित्र, संस्मरण, साक्षात्कार, यात्रा वर्णन आदि विधाएँ है। सब की अपनी-अपनी शैली है, लेकिन उपन्यास विधा जिस में जीवन और जगत का अति सूक्ष्म चित्रण होता है। उपन्यास में मानव जीवन के समग्र पहलूओं का उद्‌घाटन होता है।

हिंदी साहित्य का अध्ययन करते समय मैं प्रगतिवादी साहित्य से अत्याधिक प्रभावित हुआ। प्रगतिवादी साहित्य 'प्रगति' को देखता है समाज की उन्नति पर विश्वास करता है लेकिन समाज में दलित वर्ग उपेक्षित है। समाज में वह उपेक्षा का पात्र बन गया है। समय समय पर उनका शोषण किया गया है। समाज के भीतर दलितों पर अन्याय-अत्याचार, उच्च वर्ग द्वारा शोषण, उन्हे अपमानित करना, अहंम् को ठेंस पहुँचाना आदि हो रहा है। दलित विमर्श पर शोधकार्य करते समय दलित जीवन की स्थितियों को समझता गया। शोधकार्य करते समय दलित जीवन पर जितना लिखा गया, मैंने उस साहित्य का पुरी ईमानदारी के साथ अध्ययन किया हैं।

शोध कार्य करते समय उपन्यासोंने विशेष रूप से प्रभावित किया है। यह उपन्यास अतित और वर्तमानसे जुडे हैं, समाज के अन्दर दलितों की दुखभरी जिंदगी और उनका शोषण आज भी कहीं न कहीं पर दिखाई पडता है। नतीजन उनके प्रति मेरे मन में एक प्रकार से जिज्ञासा का भाव निर्माण हो गया। मुझे लगने लगा की इस पर शोध कार्य करना चाहिए। समकालीन उपन्यासों मे दलित जीवन का चित्रण कैसे हुआ है, इस पर अनुसंधान किया है। अब दलितों को मुक्ति के लिए साझा

लढाई की पेशकश की है। परम्परागत ढॉचे को बदलने के लिए लेखक ने बाबासाहब आंबेडकर के शिक्षा, संगठन और संघर्ष की महत्ता पर बल दिया है। सदियों से अमानवीय व्यवस्था से दलित के शोषण, उत्पीडन के प्रति मुक्ति का द्वार खोलकर सामाजिक बदलाव के प्रति नई आशावादी नजर उत्पन्न करके उपन्यास को नई दिशा दी हैं।

हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास में बहमुखी विचरण पाया जाता हैं। हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन के चित्रण का भी एक लंबा इतिहास हैं। उपन्यास के पहले दौर में दलित जीवन का चित्रण देखने को नही मिलता किन्तु उसी के संकेत प्रसंग प्रसंग पर कम अधिक मात्रा में मिलते हैं, प्रेमचंद के आगमन से ही उपन्यास यथार्थ की भूमि में आ गया हैं। अतः समाज के भीतर का चित्र उपन्यासों में दिखाई देने लगा था, ग्रामीन परिवेश वहॉ का रहन सहने उनकी पिडा त्रासदी का व्यथा का चित्र प्रेमचंदजी के समय ही दिखाई देने लगा था। स्वांतत्र्योत्तर काल में दलित चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों की संख्या पर्याप्त मात्रा में पायी जाती हैं। पिछले पाँच दशकों में उपन्यासकारो ने बदलते परिवेश, दलित जीवन के विविध शोषण के स्वरूपों को अपने उपन्यासों में चित्रित किया हैं। यह देखने में आया हैं कि प्रेमचंद काल तथा प्रेमचन्दोत्तर काल (स्वाधीनता-पूर्व) में दलित जीवन का चित्रण प्रायः अदलित लेखको द्वारा हुआ हैं। हिंदी साहित्य में दलित लेखन का आधार को यदि देखा जाए तो मराठी में दलित साहित्य की जो भूमिका हैं, वैसी भूमिका हिंदी के भीतर नही दिखाई देती हैं। दोंनो भाषाओं की पृष्ठभूमि भिन्न रूप में दिखाई देती हैं, महाराष्ट्र में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का प्रभाव दलित साहित्य पर दिखाई देता हैं, वैसे ही हिंदी पर भी दिखाई देता हैं। प्रस्तुत उपन्यासों मे जहॉ एक और दलित जीवन की व्यथा-कथा निराशा, घुटन, त्रासदी हैं, वही दलित जातियों के भीतर एक क्रांतिकारी रूप भी दिखाई देता हैं। जो भविष्य की दिशाओं को आलोकित कर रहे हैं। दलित उपन्यासों के अध्ययन पर यह सबसे अधिक यातना यह दलित नारी की दिखाई देती हैं, एक ओर समाज की करूण गाथा, दुःख को भोगना है, तो दुसरी ओर सवर्ण के द्वारा उनके शरीर को नोंचा जाता हैं। दलितों को वर्णव्यवस्था के कारण दीन कार्य करना पडता हैं, दलित जाति के पिछडेपन के लिए अशिक्षा ही कारण हैं, शिक्षा के अभाव में विचार करने की ही क्षमता को वे भूल गए हैं, उन्हे कुछ भी नही सुझता और उच्चवर्गीय लोंगो ने उनका शोषन किया हैं। कामकाज की तलाम में कोसो दूर चले जाने के कारण वे अंसगठीत हैं, इसलिए वह चूपचाप सब सहते हैं। सदियों से

उनके मन पर दलितपन की मानसिकता हैं, हम अछुत हैं की भावना कई बार उनकी प्रगति के मार्ग में बाधा बन जाती हैं। समाज के भितर पंरपरासे चली आयी अंधविश्वास तथा पुराने जर्जर रुढि-रिवाज भी दलित जीवन की प्रगति के मार्ग में बाधक सिद्ध हुए हैं। उन्हे दूर करना साहित्य का लक्ष्य है, समकालीन हिंदी उपन्यासों में इसी का चित्रण हुआ है उसे उजागर करना इस परियोजना का शोध कार्य रहा हैं।

प्रथम अध्याय

दलित शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थ

भूमिका

मानव की चेतना में एक स्वाभाविक भावना है 'स्वतन्त्रता' वह समाज में स्वच्छंद रहना चाहता हैं, कोई बंधन उसे ना रोक सके किन्तु भारतीय समाज व्यवस्था को यदि देखा जाए तो तीन हजार वर्ष पूर्व 'मनुस्मृति' नामक ग्रंथ लिखा गया जिसमें वर्ण व्यवस्था का निर्माण किया गया। उच्चवर्ग के कठिन कार्य के लिए एक ऐस समाज की निर्मिती की गई जिसे शूद्र कहा गया। तीन वर्गो की सेवा करना उसके जीवन का लक्ष्य होगा। धर्म के आधार पर उच्चवर्ग की सेवा में ही शूद्र की मुक्ती का मार्ग खुलता हैं, ऐसा उसके मन मस्तिष्क में भर दिया जाता हैं। और वह चूपचाप सदियों से अपना यही कार्य करता आ रहा हैं, आज भी वह घृणा, त्रासदी, दास्यता की पीडा को झेल रहा है। भारतीय समाज व्यवस्था में चतुर्थ वर्ग को शूद्र, अस्पृश्य, हरिजन और आज दलित नाम से जाना जाता है। उसके लिए वेंदो का पठन तो दूर, श्रवण तक वर्ज्य था, दलित विचारकों चिन्तको और लेखको के भीतर जगे आत्मबोध के परिणाम स्वरूप दलित साहित्य की निर्मिती हो गई। जो भोगा सहा उसी को लिखा। अपने जीवन की त्रासदी तथा इससे छूटकारा पाना यह मुख्य उद्देश इनका था। इसलिए इस साहित्य की निर्मिती हो गई है।

भारतीय समाज में नवीनतम् और अनुप्रास बदलाव के रूप में जो साहित्य उभरकर सामने आया वह दलित साहित्य है। आज दलित साहित्य एक आन्दोलन के रूप में समाज के भीतर छाया हुआ है। इसकी शुरुआत १९६० में मराठी भाषा से मानी जाती है। सन १९७० तक मराठी भाषा के साहित्य में एक मील का पत्थर साबित हुआ। समाज के भीतर की वास्तविकता को उजागर करनेवाला यह साहित्य है, लेकिन लगभग दो दशकों के बाद अन्य भारतीय भाषाओं के भितर वही आत्मशोध, नकार, विद्रोह की भावनाओं को लेकर लिखा दलित साहित्य कन्नड, गुजराती, हिंदी आदि भाषाओं में दस्तक देने लगा और उसकी गूँज सुनाई देने लगी। अन्य भारतीय भाषाओं के भितर भी दलित साहित्य लेखन यह शुरू हुआ समाज के सामने एक ज्वलंत सत्य सामने आने लगा। दलित साहित्यकारों ने अपनी वेदना को लिखा अपनी अनुभूति अभिव्यक्ति ही साहित्य में दिखाई देने लगी। समाज के भितर

का एक वर्ग ऐसे भी जीता है इसकी प्रचिती होने लगी। उनकी इच्छा, आकांक्षा, प्रताडना की खुली किताब यह साहित्य बन गया था।

३ अप्रैल १९२७ को डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने जिस मराठी पाक्षिक की शुरुआत की थी उसका नाम था 'बहिष्कृत भारत'। दलित आज भी 'बहिष्कृत' है। हाशिये के बाहर खडा भारतीय दलित समाज आज आत्मसम्मान तथा बहिष्कृत जिंदगी से मुक्ति पाने का संघर्ष एवं अपने आत्मसम्मान की पहचान की लडाई लड रहा है। भारत देश के बारे में डॉ. इक्बाल ने कहा था ''सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा'' अर्थात विश्व में अच्छे से अच्छा देश हिंदुस्तान हैं। पता नहीं हमारे देश में कौनसी कमजोरीयाँ रह गई? स्वंतत्रता के बाद भी सदियों पुरानी भेदभाव की प्रथा और सामाजिक असमानता की भावना को समाप्त करने का कार्य हाथ में लिया था। लेकिन उद्देश की प्राप्ती में हम कहीं भटक गये हैं। उसकी पूर्ति कब होगी, कहा नहीं जा सकता है।

दलित साहित्यिक आन्दोलन की मुख्य प्रेरणा यह डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, महात्मा ज्योतिबा फुले की विचारधारा के परिणाम स्वरूप दिखाई देती है। लेकिन यह परम्परा बहूत प्राचीन दिखाई देती है। चोखामेळा, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, ज्ञानेश्वरजी में कई सूत्र दिखाई देते हैं। लेकिन प्रमुख प्रेरणा डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर है। वैसे तो उत्तर भारत की संत परम्परा में भी दलित भावना दिखाई देती है। सिद्धनाथ परंपरा में कबीर रविदास आदि कवियोंने दलित जीवन की पृष्ठभूमि का आधार लेकर ही अपनी रचनाओं की अभिव्यक्ति दी है। वैदिक काल में भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था थी। ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चार वर्ण थे। भारतीय समाज के एक बहुत बडे हिस्सें शूद्रों को अस्पृश्य बना दिया गया। उसे गाँव के बाहर रखा गया, यह वर्णव्यवस्था जातिव्यवस्था का आधार बन गई थी। तथा हिंदु धर्म के अनेक धर्म ग्रंथों व स्मृतियों की रचना इस प्रकार की गई कि वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था को समाज में मान्यता दी गई। काल्पनिक कथाओं के द्वारा साधक बाधक परिणामों को समाजमान्य बना दिया। इस के खिलाफ आचरण पर समाज में मनुष्यत्व को बुरा, राक्षस आदि कहा जाता था, इसलिए समाज के मनुष्य इन्हीं का पालन करता रहा और जातिव्यवस्था की जडें समाज व्यवस्था में मजबुत बनने लगी थी। समाज के भितर जातिव्यवस्था की अमानवीयता के परिणाम स्वरूप धर्मपरिवर्तन शुरू हुआ। अस्पृश्यता, गरीबी, नौकरी, भुख और अमानवीय

व्यवहार के परिणाम स्वरूप निम्नवर्ग अन्य धर्म की और आकर्षित हो रहा था। इस त्रासदी से मुक्ति पाना उनके जीवन का लक्ष्य बन गया था। जानवरो से भी भयावह जीवन मनुष्य को मिल रहा था, इसलिए धर्मपरिवर्तन की ओर लोगों की रुचि दिखाई दे रही थी। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने धर्म परिवर्तन का निर्णय लिया। जिस समाज के भितर आत्मसम्मान नही है उसमे रहना बेकार है, इसलिए शांति और मानवतावादी बौद्ध धर्म में उन्होंने दिक्षा ली। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर तथा उनके अनुयायीयों ने हिंदु धर्म को त्याग कर बौद्ध धर्म की दिक्षा नागपूर में ली और एक सामाजिक क्रांति दलितों के भितर निर्माण की । जिस समाज के भितर आत्मसम्मान नही है, उसमें रहना बेकार है। दलितों को आत्मसम्मान देने का कार्य डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरजी ने दिया है, वे दलितों के मसिहा है। कबीर को वे अपना गुरू मानते थे, उनकी वैचारिक प्रेरणा से डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर प्रभावित थे। कबीर उत्तर भारत में दलित साहित्य के अग्रदुत माने जाते है। वैसे तो अस्पृश्यता, अमानवीय विचारों का विरोध करीब चार हजार वर्ष पूर्व दार्शनिक चार्वाक ने किया। गौतम बुद्ध का वैचारिक आधार इसी प्रकार दिखाई देता है। मानवतावादी दृष्टिकोन को लेकर ही उन्होंने अपनी वाणी के द्वारा समाज के सामने आदर्शो का करूणा का भाव रखा हैं। दुःखो को दूर करना अमानवीयता को दूर करना उनका अष्टांग मार्ग हैं। डॉ. आबेडकरजी ने इसे स्विकार किया ओर ऐतिहासिक क्रांति का निर्माण हुआ। धर्म परिवर्तन जिसमे हमें मंदिर में प्रवेश निषिद्ध माना जाता था, उसी धर्म को ठुकरा दिया और मनुष्य को मनुष्य के रूप में सम्मान देनेवाले धर्म को स्विकारा। दलित जीवन की त्रासदी यह दलितपन है। 'दलित' शब्द आधुनिक है लेकिन 'दलितपन' प्राचीन है। जो गाँव के बाहर रहकर अपना गुजार करता था, जो डरकर, भयभीत होकर जीवन जीता था ऐसा समाज दलित है। जिसकी अपनी पहचान है, अपने शब्द, बिम्ब, प्रतिक है। इसलिए दलित साहित्य के लिए अलग सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता है। दलित साहित्य की भाषा, बिम्ब, भावबोध परंपरावादी साहित्य से भिन्न है, उसके संस्कार भिन्न है। अलग सौंदर्यशास्त्र की परिकल्पना से हिंदी साहित्य का विघटन नहीं, विस्तार ही होगा। मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देनेवाला यह दलित साहित्य है।

दलित शब्द की उत्पत्ति एंव अर्थ

'दलित' इस शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में मतभेद रहे हैं। इस तरह

से 'दलित शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातू 'दल' से हुई है। अतः इस शब्द के संदर्भ में विविध विद्वानों द्वारा विविध शब्दकोशों में विभिन्न अर्थ दिए गए है।''

''विकसना, फटना, खण्डित होना, द्विधा होना, चिरा हुआ, बिदरना, खुला हुआ, फैला हुआ, विनष्ट किया हुआ।'' 'दलित' शब्द के उच्चारण से ही पिछडेपन का अहसास यह होता हैं। यह शब्द प्राचीन काल से चला आ रहा है, प्राचीन काल में हिंन्दुओं के धार्मिक ग्रंथों में 'दास' का परिचय हो जाता है, जो उच्चवर्ग की सेवा हेतु कार्यरत है, आज 'दलित' लगभग उसी का ही प्रतिरूप हैं। वेदो, पुराणों में व्यक्त जीवन पद्धति वर्ण चार्तुवर्ण्य के चार सोपानों पर टिकी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णो पर आधारीत आचार्तुवर्ण व्यवस्था ऋग्वेद काल से आजतक किसी न किसी रूप में विद्यमान दिखाई देती है। आज के 'दलित' और उस जमाने के शूद्र में विशेष समानता दिखाई देती है। फलस्वरूप उस जमाने की समाज व्यवस्था के संदर्भ में शूद्र की स्थिती क्या थी यह देखना अनिवार्य है। प्राचीन काल में शूद्रों का जीवन बहुत ही भयावह तथा निरर्थक था। उसका संपुर्ण जीवन यह ब्राह्मणों की सेवा में लगा रहता था। धर्मग्रंथ में ऐसा निर्माण किया गया कि शुद्रों को विद्या, अर्जन से दूर रखा गया। अच्छे वस्त्र, भोजन, राजमार्ग पर चलना यह सभी निषिद्ध माना जाता था। शूद्रों को कठिन दंड दिया जाता था शूद्र भय से चुपचाप अपना कार्य करते थे। ब्राह्मणों के लिए कोई दंड नही था।

भारतीय समाज व्यवस्था में सबसे ऊँचा स्थान ब्राह्मण का है। समाज को ज्ञानदान देने का कार्य ब्राह्मण करता है। उससे निम्न है – रक्षा का भार क्षत्रिय पर और निम्न कृषक–वैश्य हैं। इन सभी के नीचे है शूद्राति–शूद्र, सभी की सेवा करना उसके जीवन की सार्थकता है। निरर्थक जीवन जीने के लिए शूद्रो को मजबूर किया गया, उनका सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, मानसिक शोषण किया गया, उन्हें शोषित निरीह और बहिष्कृत जीवन जीना पडा है। वैदिक धर्म की प्राचीन शिक्षा से विषमतावादी जहर फैलाने वाले ग्रंथ निर्माण किए गए। इन ग्रंथो के भितर जीवन कैसे जीना तथा संसार की निर्मिती कैसे हो गई है, ऐसी रंजक कथाओं की निर्मिती की गयी। 'ऋग्वेद' के पुरूष सुक्तों में ऐसे पुरूष (अर्थात पुरूष ब्रम्ह) की कल्पना की गई है, कि समस्त सृष्टी जड् चेतन सभी पदार्थो को मनुष्यों को उस पुरूष–ब्रह्म का अंग माना गया है। सभी का कर्ता वही हैं, उसी के अनुसार यह संसार चलता है, ऐसी मनघडन कथाओं की निर्मिती धर्मग्रंथों के भीतर की गई थी। यह भी कहा जाता है,

कि इसी पुरूष ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जँघा से वैश्य, पैंरो से शूद्र की उत्पत्ति भी ऋग्वेद के पुरूष सुक्त में बताई गई है। इस तरह भारतीय समाज के भीतर सदियों से इसप्रकार का प्रहार होता आ रहा है, और इस व्यवस्था को समाज ने भी स्विकारा है।

भारतीय समाज की एक सामाजिक संरचना है, जिसमें वर्णव्यवस्था और धर्म, दोंनो सम्मिलित हैं। उनके कर्तव्य भी बताए हैं। चारों वर्णों के कर्तव्य है।

''आरभ्यज्ञा : क्षत्राश्च, हृवियज्ञा, विशःस्मृताः।

परिचार यज्ञः शुद्रश्च जधयशं द्विजास्तथा।।''

अर्थात 'क्षत्रियों के लिए पराक्रम व्यवसाय (उद्योग) करना वैश्य का कार्य, शुद्रों का कार्य श्रेष्ठ सेवाकार्य और ब्राह्मणों के लिए जप आदि करना यह कार्य है। इस तरह भारतीय धर्मग्रंथो के भीतर इसे दैविक माना गया। ईश्वरीय शक्तियों का आभास निर्माण किया गया, इस मार्ग से नहीं चले तो मनुष्य के जीवन में आपत्ती या संकट यह आ जाएँगे ऐसा भय निर्माण किया गया और समाज के लोग भी इसी डर से इन सभी परंपराओं का पालन करने में ही अपना हित मानने लगे थे। समाज के भीतर अलगाव का यह भी रूप दिखाई देता था। कुलमिलाकर यदि देखा जाए तो भारतीय समाज का निम्नवर्ग अपना जीवन गाव के बाहर रहकर जीता था। डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के विचारों से ही प्रेरित होकर दलितों के भीतर एक क्रांति की निर्मिती हो गई। दलितों के भीतर चेतना जगाने का कार्य दलित साहित्य ने किया है। दलित शब्द का अर्थ ही यह स्पष्ट होता है।

'दलित' शब्द का अर्थ

'दलित' शब्द को लेकर अनेक अर्थ हमारे सामने आते है, विशेषतः मराठी साहित्य के अंतर्गत दलित संज्ञा विशेष स्थान पाकर उसका अंग बनी है। 'दलित' शब्द का अर्थ आज सीमित नहीं है, बल्कि एक व्यापक अर्थ के रूप में हमारे सामने आ जाता है। समय और परिस्थिति के परिणाम स्वरूप 'दलित' शब्द का अर्थ बन जाता है। वह किसी भी एक अर्थ में नही है, जहाँ हनन होता है, दलित अर्थ वहाँ उभरता हैं। आज विभिन्न शब्दकोशों में विभिन्न अर्थ हमारे सामने आ जाते हैं।

हिंदी में 'दलित' शब्द का अर्थ

दल – विकसना, फटना, खण्डित होना, द्विधा होना।

दल – चूर्ण करना, टुकडे करना, विदारना, आधा करना।

दल – सैन्य, लष्कर, आदि।

मराठी मे 'दलित' शब्द का अर्थ

दल – नाश करणे (विनष्ट करणे)

दलित – नाश पावलेला (विनष्ट हुआ)

दीन – दलित – समानार्थी शब्द

दलित – तुडविलेले, चुरडलेले, मोडलेले

संस्कृत में 'दलित' शब्द का अर्थ

दल – नाश करना (विनष्ट करना)

अंग्रेजी में – 'दल' (दलित–दलित) टू बर्स्ट, ओपन, स्प्लिट, क्लेव, कॅक। दलित – ब्रोकन, टार्न, रेष्ट, स्प्लिट।

शब्दकोंशो मे 'दलित' शब्द का अर्थ

'दलित' शब्द का अर्थ विविध शब्द कोशो में देखे तो उसका अर्थ यह विविध प्रकार से पाया जाता है।

हिंदी – कन्नड – अंग्रेजी – त्रिभाषा कोश में दलित शब्द का अर्थ इस प्रकार मिलता हैं।

१.	जो कुचला दलाया	– तुलियल्पट्ट	
	रौंदा गया हो;	– अर दुपुडियारिद	– Crushed
	जो दबाया गया हो	– अदूमलपट्ट	– Down Trodden
	या जिसे पनपने या बढने	– मंदुवारियदन	
	न दिया गया हो	– तु ड दुनिती	Depressed
	हीन अवस्था में पडा हुआ	– सलाट्टहीन	
		स्थितिथालिरूव	

'दलित शब्द का अर्थ शब्दकोश हिंदी – कन्नड – अंग्रेजी भाषा में संपूर्ण

सार रूप मे देखे तो जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, मोडा, मसला मर्दित, रौंदा, कुचला खंडित, टुकडे, विनष्ट, पस्त हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित उत्पीडित, शोषित तथा सताया गया हो, वह दलित हैं। अतः व्यापक रूप में दलित शब्द का अर्थ यह लिया जाता हैं।

विविध धर्म ग्रंथों में दलित शब्द का अर्थ

दलित शब्द का प्रयोग प्राचिन काल से ही भारतीय धर्मग्रंथो के भीतर किया गया है। ग्रंथों में भी दलितों का अर्थ यह स्पष्ट रूप से दिया हैं।

''ब्रम्हण्यस्य तपो ज्ञान तपः क्षत्रियस्य रक्षणाम।

वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः सूद्रस्य सेवनत।।''

अर्थात ब्राह्मण का ज्ञान तप, क्षत्रिय का रक्षा, तप, वैश्य का व्यापार तप और ब्राह्मण की सेवा यही शूद्र का तप है। इस तरह समाज के भीतर चार वर्णव्यवस्थाओं का निर्माण किया गया। शूद्र का कार्य ही ब्राह्मण की सेवा करना है। इस तरह से दलित एक प्रकार का शूद्र, उच्चवर्ग के लोग उसे कुचलते थे। दलित शब्द का अर्थ उस शब्द में ही निहित है, दल-दल यानी किचड से लथपथ जगह जो संकटो में फंसाने वाला स्थान है, उसी प्रकार हिन्दु समाज का गठन हैं। दलित यानी समाज में जो व्यक्ति न्याय, आचार, ज्ञान, शिक्षा, मानसिक विकास, आर्थिक विकास, राजनैतिक सहुलियत से वंचित आदि संकटो को सदा सहन करती आयी हुई समस्त मानव जाति दलित मानने योग्य हैं। शूद्र इसी तरह अपने जीवन को जीता आया था, आगे वही दलित कहलाने लगा हैं।

बाइबल मे 'दलित' शब्द का अर्थ

दलित शब्द की व्युत्पत्ति इब्रानी भाषा के 'दल' से हुई है। बाईबल में इसका उपयोग लोंगो के विशेष समुदाय की स्थिति दर्शाने के लिए विशेषण के रूप में हुआ है। इसका मूल विशेषण रूप 'दल' है और पुरुषवाचक बहुवचन 'दलेय' है और स्त्री वाचक बहुवचन 'दलोत' या 'दलात'। इन रूपों के उदाहरण 'उत्पत्ति' ४१.६ निर्गमन २३.३ रूत १०.२ शुभराल १३.४ अय्युब ५:१५ भजन संहिता ४१.१ नीतिवचन १०:१५ यशायह ११.४ चिर्मयाट ४:७ आमोस २:७ में मिलते हैं। एक समुदाय के लोंगो को समूहवाचक सर्वनाम के रूप में २ राजा २४:१४ और सिर्मयाह ५२: १५-१६ 'दीन-दरिद्र' और 'महा-दरिद्र' लोग कहा गया है।

दलित शब्द के विभिन्न पर्यायों से ध्वनित अर्थ

दलित – जो कुचला, दला, मसला या रौंदा गया है वह।

शूद्र – भारतीय समाज में वर्ण–व्यवस्था के कारण अंतिम वर्ण (निम्नवर्ण)

अछुत – ऐसा व्यक्ति जो छूने योग्य न हो।

अस्पृश्य – जिस व्यक्ति को स्पर्श न किया जा सके।

अंत्यज – निम्न जाति में जन्मा व्यक्ति।

शोषित – जिस वर्ग का सदियो से सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, एंव शारीरिक रूप से शोषण होता रहा है।

पीडित – जो व्यक्ति सदियों से आभिजात्यवर्ग के अन्याय, अत्याचार से पीडा भोग रहा हैं।

वंचित – जिस किसी को वैदिक काल से शिक्षा, धर्म, संस्कृति, एंव मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है।

उपेक्षित – जो व्यक्ति सदियों से सवर्ण समाज द्वारा अवहेलना झेलता आया हैं।

प्रताडित – जो मनुष्य संदियों से अपने अधिकारों से वंचित होकर परेशान होता रहा हैं।

कुल मिलाकर 'दलित' शब्द एवं इसके विभिन्न पर्यायों से ध्वनित अर्थ को देखकर पता चलता है कि सभी में कही ना कही शोषण पीडा, व्यथा, दुःख का भाव निहित हैं। कही पर यह पीडा जातिगत है तो कही पर धार्मिक, कही आर्थिक रूप में तो कही नैतिक या शारीरिक रूप में। 'दलित' शब्द के अर्थ समय और परिवेश के कारण भी बदलते हुए दिखाई देते हैं।

दलित शब्द की परिभाषा

'दलित' शब्द का अर्थ देखने के पश्चात 'दलित शब्द की परिभाषा को समझना आवश्यक है। बिना परिभाषा के इस विषय को समझना जैसे आरसी में मछली पकडना होता है। इसलिए दलित साहित्य को लेकर विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं को देखना आवश्यक है, इन विचारकों की परिभाषाओं को देखने से

समस्या का समाधान ढूँढ सकते हैं।

हिंदी साहित्यकोश में दलित वर्ग की व्याख्या देते हुए डॉ. धीरेन्द वर्मा ने लिखा है कि ''यह समाज का निम्नतम वर्ग होता है जिसको विशिष्ट संज्ञा आर्थिक समस्याओं के अनुरूप ही प्राप्त होती हैं। उदाहरणार्थ दासप्रथा मे दास, सांमतवादी व्यवस्था में किसान, पूंजीवादी व्यवस्था में मजदुर समाज का दलित वर्ग कहलाता हैं।'' 'दलित' शब्द शोषण के साथ ही हमारे सामने आता हैं। डॉ. भगवानदास कहार ने इस प्रकार परिभाषा दी है – ''प्रचलित आदिवासियों जन–जातियों और अस्पृश्य जातियों के रूप में तथा आर्थिक सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से नितांत पिछडी जातियों के रूप में। वस्तुतः दलित व शोषित शब्द का प्रयोग अर्थप्राप्ति के स्तर पर मानवतावादी दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। दलित या शोषित वर्ग से तात्पर्य यह है कि एक ऐसे वर्ग समूह या जाति विशेष का व्यक्ति अथवा जिसके धन, संपत्ति, माल अधिकार एंव श्रम आदि का हरण किसी अन्य सत्ता, शक्ति संपन्न वर्ग या जाति के द्वारा किया जाता हो।'' भारतीय दलित साहित्य अकादमी दिल्ली के अध्यक्ष डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने कहा है कि दलित शब्द गुँगा नहीं है, वह स्वंय अपनी परिभाषा देता है। उनके द्वारा दी गई परिभाषा बहुत ही चोटदार और सटीक हैं। उन्ही के शब्दों में ''दलित शब्द मूक नहीं है, यह अपनी परिभाषा स्वयं उद्‌भाषित करता हैं। दलित वह है जिसका दलन किया गया हो, शोषण किया गया हो उत्पीडन किया गया हो। उपेक्षित, अप्रमाणित प्रताडित, बाधित और पीडित व्यक्ति भी दलित की क्षेणी में आते हैं। इस तरह 'दलित' शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत जहाँ सदियों से सामाजिक वर्ण व्यवस्था और जातिवाद से अभिशापित दलित, शोषित, उपेक्षित व उत्पीडित व्यक्ति आते है; वहीं सदियों से प्रताडित, उपेक्षित, अपमानित, शोषित, सामाजिक बंधनों में बाधित एवं बच्चे भी इसी श्रेणी में शामिल हैं। भूमिहीन, अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित, निराश्रित भी दलित ही हैं।'' डॉ. सुमनाक्षर स्वंय दलित वर्ग से आये हुए है, इसलिए इन सभी संवेदनाओं को उन्होंने भोगा है, सहा है। इसलिए उनकी वाणी के भीतर आए शब्द तीखे जरूर है किंन्तु परिभाषा उपयुक्त हैं। डॉ. रामकृष्ण राजपूत लिखते है कि ''वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्विरोध, विसंगतियों, विषमताओं, और सवर्ण पक्षधरता को नकारना तद्‌जनित उद्‌भुत रुढियों, परंपराओं, आदर्शो और मान्यताओं के चक्रव्युह को तोडकर समता, स्वंतत्रता और बंधुत्व भाव उत्पन्न करने हेतु लिखे

जानेवाले साहित्य को हम दलित साहित्य कह सकते हैं।'' दलित साहित्य के संदर्भ में जो संवेदनाएँ है, उन्हें परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। दलित साहित्य को श्रीमती उर्मिला राजपूतजी ने परिभाषित किया। किंन्तु उनका आन्दोलनात्मक रवैया दिखाई दिया। वे कहते है'' ''वर्णव्यवस्था द्वारा नकारे गये लोंगो के प्रति मानवीय संवेदना, करूणा से द्रवित होकर उनकी विषम स्थितियों का चित्रण करना। उपेक्षित, शोषित, दलित, पीडित और जंजीरो से जकडी स्थिति के प्रतिकार, प्रतिरोध, और प्रतिशोध की भावना की आन्दोलनात्मक सृजन शक्ति ही दलित साहित्य है।'' दलित साहित्य की परिभाषा अनेक विद्वानो ने की है, तथा उनकी चर्चा, वार्तालाप में भी दलित किसे कहा जाय? दलित साहित्य से क्या तात्पर्य है? दलित साहित्य के अन्तर्गत किन – किन विषयों को प्रमुखता दी जाए? ऐसे अनेक सवाल और उनके जवाब हमें परिभाषाओ के भीतर मिलते है। लेकिन दलित शब्द की व्याख्या करने पर किसी जाति विशेष के अर्थ का बोध नही होता वह एक व्यापक संकल्पना है। डॉ. प्रेमलता चूटैल ने अपने लेख 'दलित साहित्य का स्वरूप – चिंतन में दलित किसे माना जाए इस विषय में दो मत प्रस्तुत किये हैं। जिसमें उन्होंने एक अर्थ को संकुचित अर्थ कहा है तथा दुसरे को व्यापक कहा हैं। उन्होंने संकुचित अर्थ का मुख्य कारण धार्मिक ग्रंथ और सामाजिक व्यवस्था माना हैं। हमारे धर्म तथा सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत चतुर्थ वर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह माना है। दुसरे प्रकार विस्तृत अर्थ या व्यापक अर्थ के अन्तर्गत उन सभी लोगो को समाहित कर लिया जाता है जो किसी न किसी प्रकार से दबाये गये है जिनका शोषण हुआ है, वे चाहे किसी भी जाति, समुह, वर्ण तथा संप्रदाय के क्यों न हो सभी का समावेश इस दलित वर्ग के अन्तर्गत किया जा सकता हैं। 'दलित' एक प्रकार कि पिडा का दर्शन कराता है, और उसी का ही चित्रण दलित साहित्य के भीतर किया जाता है। 'दलित' की परिभाषा पत्रकार राजकिशोर के अनुसार – दलित शब्द एक वर्गीय शब्द ठहरता हैं। भारत एक गरीब देश है, वहॉ की आधी आबादी आर्थिक दृष्टि से दलित ही है। यह एक स्वायत्त देश हैं। लेकिन जिन्हे दलित कहा जाता हैं उनका वंश कुछ और है। दलित शब्द उन जातियों के अर्थ में रूढ होता जा रहा है, जिन्हे पहले 'अछूत या हरिजन' कहा जाता था। इनके लिए कानूनी शब्द अनुसूचित जाति है।

हिंदी के दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मिकिजी ने अपने जीवन में इन

सभी वारदातों को भोगा है, शैक्षणिक क्षेत्र में बडी यातनाए सही हैं। जब वे पढते थे तो जाति के नाम पर ही उनके साथ कठोर व्यवहार किया जाता था, जाति के नाम पर ही बुलाया जाता, गालियाँ दी जाती थी। यहाँ तक कि शिक्षक भी चूहडे का बच्चा कहकर, मानसिक यातनाएँ देता था। दिन भर स्कुल का मैदान साफ करने लगाया जाता था। यह सबकुछ समय ने करने लगाया है, अब समय बदल गया है। परिवेश मे बदलाव यह आया है, किन्तु यादें मन मे अमीट छाप छोडकर गयी है। उन्हें भूलाना भी नहीं आता। समय आज भी भुले दिन को याद करवाता है, इसलिए वे कहते है ''ना जाने किस हराम जादे ने डाल दिया है जाति का फंदा।'' क्योंकि इसीकारण अपना बाह्यकाल यातनाओं से गुजर चुका है, जिस उम्र में हँसने खेलने के दिन थे, वहाँ मुँह छुपाए घुमना पडता था। लोगों का भद्र व्यवहार सहना पडता था। दलितो के प्रति सदियों से अन्याय किया गया है। वही दलित अब न्याय करने योग्य बने हैं। दलित साहित्य में आज लिखनेवाले अधिकतर साहित्यकारों ने अपने जीवन में सदियों से उस नरकीय जीवन को भोगा है उसी को लिखा है, और आनेवाली पिढी को प्रेरित किया है, कि वे इन सब से अपना अलग जीवन और अस्तित्व का निर्माण करे। कुछ महत्वपूर्ण दलित साहित्यकारों की परिभाषाओं को देखने से इस विषय को और भी पुष्टि मिल सकती हैं। माता प्रसाद दलित शब्द के विस्तार को रेखांकित करते हुए लिखते हैं ''दलित शब्द का अर्थ बडा व्यापक हैं। इसमें दबाये गये अपमानित, पिडित, उपेक्षित, शोषित सभी आते हैं। इसमें स्त्रियों और शुद्र वर्ग में आने वाली पिछडी, जातियाँ और अति पिछडी जातियाँ भी है जो दलितों की भाँति, शिक्षा संपत्ति एकत्र करने से वंचित है और अपमानजनक जीवन जीने को विवश है।'' यहॉ माता प्रसाद दलित की व्याख्या अपने जीवन अनुभव तथा समाज की वास्तविकता को लेकर उसे स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। दलित शब्द की परिभाषा को मनुष्यता से जोडते हुए डॉ. धर्मवीर का मानना है कि ''दलित एक मनुष्य पैदा होता है। मनुष्य एक सम्भावना हैं। हर दलित व्यक्ति मनुष्य की सम्भावनाओं से भरपुर पैदा होता है वे लोग मनुष्य के दुश्मन कहे जायेंगे जो मनुष्य की सम्भावनाओं पर किसी भी रूप में रोक लगाते हैं। दुसरी तरफ से, इस चिंतन से इतना और कहने की जरूरत है कि मनुष्य केवल हिन्दु नहीं है अर्थात दलित भी मनुष्य है। डॉ. जयप्रकाश कर्दम जी का कहना है कि, ''इतिहास में साहित्य लेखन का कार्य गैर दलितो द्वारा ही किया जाता रहा हैं। दलितों के प्रति साहित्य के इस

उपेक्षापूर्ण और नकारात्मक रवैये ने दलितों को अपने दर्द और अनुभवो को स्वंय अभिव्यक्त करने की ओर प्रवृत्त किया। यातना और उत्पीडन ही नही, जीवन के हर पहलु को उन्होने अपने सृजन का प्रतिपाद्य बनाया। दलित लेखको ने अपने जीवन के जिस कडवे और तल्ख तथ्य को बेबाकी और साहस से साहित्य में प्रस्तुत किया है उसे केवल वे ही कर सकते हैं। भगवानदास जी के विचार भी इसी प्रकार के है, ''दलित साहित्य सही मायने में वह साहित्य है जो दलितो ने अपने ज्ञान अपने तजुर्बे, अपनी कठिनाइयो और पीडा के आधार पर लिखा।'' इन परिभाषाओं में एक संवेदना हमारे सामने आती है, समाज का एक वर्ग जो सदियों से अमानवीय जीवन को जी रहा है। सदियों से उसे प्रताडित किया गया है, समय समय पर उसे उपेक्षित रखा गया है, इन सभी का चित्रण हमें इस साहित्य के भीतर दिखाई देता है। आज साहित्य की भूमिका यह समाज को सही मार्ग पर लाने की है, सत समाज कि निर्मिती करना साहित्य का मूल लक्ष्य है, लेकिन आज हम देखते है, गैरदलितों के द्वारा लिखा गया साहित्य यह काल्पनिक है, सहानुभूति के आधार पर ही उसकी निर्मिती हो गई है। प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, अमृतलाल नागर आदि गैर-दलित लेखकों ने भी दलितों की छवि को अपनी कृतियों में उतारा है परन्तू वे दलितों के प्रति न्याय नही कर पाए हैं। सच्चाई को सामाजिक बंधनो से बाहर निकालने में असमर्थ रहे हैं। इनका साहित्य करूणाजनक माना जाता है और सहानुभूति परक है। इसमें बदले की भावना का आक्रोश दिखाई नहीं देता। जीवन मे परिवर्तन लाने का निश्चय कही झलकता नहीं। फिर कैसे इस साहित्य को पढने से दलितो के जीवन में परिवर्तन आ सकता है । दलित साहित्य तो क्रांति कि चिंगारी हैं। उसमे बदले की आग भडकती है। दलित साहित्य के भीतर एक ऐसी क्षमता है, जो जाति धर्म को समूल नाश करेगी, एक नव निर्माण की भावना और क्षमता का निर्माण करनेवाला यह साहित्य है।

दलित साहित्य को लेकर मुद्राराक्षस कहते है ''किसी सवर्ण लेखक की हिम्मत नहीं कि अपने जीवन में दलित प्रश्न का सामना कर सके। इनसे पुछना चाहिए कि तुम्हें कौन-सा कष्ट है जो पिछडें और दलितों पर लिख रहे हो। कालिदास, दंडी, जयदेव, बाणभट्ट की दुनिया का वृतांत लिखो। तुम्हें क्या कष्ट है? तुम्हे इस दुनिया में आने का हक नहीं हैं। आना चाहते हो तो पक्का सबुत दो और मजबुरी के कारण सार्वजनिक करो। मजबुरी साफ है उत्तर प्रदेश में मायावती सरकार में है। लेखकों को

सत्ता में घुसने के लिए दलित प्रश्न उठाने ही है; या वंचितो से सहानुभूति व्यक्त करनी है। बिहार में पिछडा शासन है तो वहाँ प्रकाशक राग-विराग ज्यादा बेच लेगा। मायावती राजनैतिक प्रभाव में न होती, बिहार में लालू प्रसाद यादव सत्ता में न होते तो क्या श्री. लाल शुक्ल ये उपन्यास लिखते इन सबको मालुम है कि दलितों का समय आ रहा है सत्ता में भागीदारी बढ रही है। ये लिखेंगे ताकि भागीदारी में हिस्सा बन सकें। भारतेन्दु से लेकर आज तक किसी सवर्ण ने खुद को दलित लेखक नही कहा।'' मोहनदास नैमिशराय दलित शब्द की व्यापकता को रेखांकित करते हुए लिखते है दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिये समानार्थी लगता है। लेकिन इन दोंनो में पर्याप्त भेद भी हैं। दलित की व्याप्ति अधिक है, तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अन्तर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता है, तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिये बाध्य नही हो सकते... अर्थात सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है। जबकि दलित विशेष तौर से सामाजिक विषमता का शिकार होता हैं। वह वर्णव्यवस्था के कारण प्रताडीत होता है। ''शोषक वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बन्धुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।' दलित शब्द को संवैधानिक प्रश्नों से जोडते हुए डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन की धारणा है कि 'दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है। इस तरह दलित साहित्य के प्रति विद्वानोंने अपने अपने अनुभव के आधार पर इसे परिभाषित किया है।

दलित साहित्य में दलित वर्ग से आये दलित तथा गैरदलितों ने लिखे साहित्य को भी दलित साहित्य मानना चाहिए, इस संदर्भ में खगेन्द्र ठाकूर का कहना है कि - ''साहित्य की रचना प्रक्रिया में सहानुभूति और स्वानुभूति में वैसा फर्क नहीं रह जाता जैसा कि विचारों के स्तर पर हम समझते हैं। वहाँ तो सब रचनाकार की आत्मानुभूति का अंग बन जाता हैं। रचना-प्रक्रिया में सहानुभूति का अभ्यांतरीकरण होता है अंगीकरण होता है फिर वह रचनाकार की चेतना में रचना बनकर रचनाकार की संवेदनशीलता का अंग बन जाता है। रचनाकार रचना करता है सृजन करता हैं। वह अपने अपार काव्य रचना का प्रजापति होता है। रचना के जरिए दुसरों को जगाता है। नई चेतना, नये मूल्य और नये संबध का निर्माण करना चाहता है।

इसलिए कोई लेखक दलित नहीं होता। दलित के बारें में केवल दलित लिखे इस सिद्धान्त का स्त्रोत असल में वह राजनीति है, जिसके अनुसार कहा जा रहा है कि दलित केवल दलितों को वोट दे।'' यह परिभाषा दलित साहित्य को गैरदलितों द्वारा लिखने पर दलित साहित्य की क्षेणी में रखने की भावना है, किंन्तू सही मायने में यदि देखे तो जिसने भोगा है, वह उसे लिख सकता है। यह यथार्थ की भूमि पर दलित साहित्य होता है, भुगतभोगी की जो संवेदना होती है वह किसी दुसरे की संवेदना को देखकर वर्णन नही कर सकता किसी दुसरे का दर्द देखकर हम कोई रचना नही लिख सकते है। 'जाकेऊ पांव न फटी बिवाई वह का जाने पीर पराई' जिस व्यक्ति के पैर में काँटा चुभ जाने पर उसे जो पीडा होती है। उसकी वेदना काँटा पीडित के दर्द को देखकर महसुस नहीं कर सकता। इसलिए दलित लेखक तथा गैरदलित लेखक में अंतर होता है। दलित साहित्य यह वेदना का साहित्य होता है। दलित साहित्य को दलित तथा गैरदलितों के द्वारा भी दलित साहित्य को परिभाषित किया गया है। दलित चिंतक कँवल भारती की यह मान्यता इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि ''आधुनिक हिंदी दलित साहित्य वह है जो दलित मुक्ति के सवालों पर पुरी तरह अम्बेडकरवादी हैं। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेंत्रो में उसके सरोकार वे हैं जो अम्बेडकर के थे।''

अभय कुमार दुबे भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हैं। उनका मानना है कि दलित साहित्य में अम्बेडकर का असली महत्व एक पथ प्रदर्शक और मनोवैज्ञानिक मुक्ति द्वार पर खडा कर देने का महत्व है। हिंदी साहित्यकारो ने अपनी अपनी ओर से दलित साहित्य को परिभाषीत करने का प्रयास किया था। मराठी भाषा में सबसे पहले इस पर सोचा गया उन्ही भावनाओं को लेकर लिखा भी गया। सन १९६९ में महाराष्ट्र साहित्य परिषद के दुसरे सम्मेलन में बाबुराव बागूल जी ने कहा ''दलित साहित्य का केन्द्र बिन्दु मानव है, जो मनुष्य को देश धर्म से भी उच्च स्तर पर रखता हैं। इसमें सामाजिक, दर्द, जातिवाद की पीडा, शोषण और उत्पीडन हैं। इसमें आत्मवाद ईश्वरवाद के विरोध की प्रेरणा है।''

बाबुराव बागुल जी ने मनुष्य को मुख्यतः दलित साहित्य का केंद्र बताया है साथ में जातिवाद, शोषण और उत्पीडन, आदि सामाजिक समस्याओं को महत्व दिया है, समाज के भीतर निम्नवर्ग के साथ जो व्यवहार किया जाता है, वह उचित नही है। दलितो को समाज के भीतर सम्मान मिलना चाहिए उनकी भावनाओं का

आदर होना चाहिए, समाज में वे रहते हुए मैं दलित हूँ ऐसा नही लगना चाहिए। दलित व्यक्ति खुद ही सभी से दुर रहकर अपना जीवन जीता है, चाहे कैसा भी जीवन हो, उसे स्विकार करता हुआ ही जीता है। इससे यह सिद्ध हो सकता है कि समाज मे मानव की सही पहचान होनी चाहिए। रक्त एक, अंग-अंग एक समान फिर भेद क्यों? गुलामी क्यों? इसलिए महामानव महात्मा ज्योतिबा फुले कहते है - गुलामी की यातनाएँ जो सह ता है वही जानता है। राख ही जानती है जलने का अनुभव और कोई नही। आखिर चाहे कुछ भी हो दलित होना यह सबसे बडा आघात है, क्योंकि समाज के भीतर दलितो की ओर देखने का नजरीया बहुत अलग हैं। श्री. केशव मेश्राम के अनुसार ''हजारों वर्ष जिन लोंगो पर अत्याचार हुए ऐसे अछुतो को दलित कहना चाहिए।'' राजा ढाले कहते है, ''हमारा साहित्य आज दलित साहित्य के नाम से पहचाना जाता हैं। कुछ लोग दलित शब्द से ध्वनित होने वाली अस्पृश्यता को भुलकर आर्थिक रूप से शोषित दशा को ही अपनी वेदना समझकर व्याख्या कर रहे हैं। अस्पृश्यता नष्ट करने का इससे सरल रास्ता और कौन-सा हो सकता है? अस्पृश्यता को हम खुद ही भूल जायें। अपना दुःख भुलकर जो दुसरो का दुःख अपनाकर सीने पर बोझ की तरह ढो रहे हैं, वे अपनी अस्मिता को भुल गये हैं। जो अपनी अस्मिता को समझ नही पाये हैं वही अस्पृश्यता के बदले आर्थिक दशा को महत्वपूर्ण समझ रहे हैं। वे यह भुलते हैं कि बद्तर आर्थिक दशा का मूल भी अस्पृश्यता के निर्मित कटघरों में ही हैं।''

मराठी भाषा के दलित साहित्यकार प्रा. म. ना. वानखेडे कहते है- ''दलित वे है जो मानवीयता की प्रगति में सबसे पिछडा रह गया हो और उसे सामाजिक वर्गो में सबसे दूर रखा गया हो।'' नामदेव ढसाळ के शब्दो में ''अनुसूचित जातियाँ, बौद्ध, श्रमिक, मजदूर, भूमिहीन, किसान, गरीब किसान और खानाबदोश जातियाँ, आदिवासी आदि सभी दलित है।

इस प्रकार यहाँ पर उपर्युक्त विद्वानों ने दलित शब्द के अर्थ को एक विस्तृत फलक पर रखकर देखने का प्रयास किया हैं। उन्होंने उन सभी को दलित की कोटी में रखा है जो येन केन प्रकार से शोषित और पीडित है। इन विद्वानों की परिभाषाओं को देखने के पश्चात एक प्रश्न हमारे सामने होता है। एक ब्राह्मण और एक दलित दोंनो पिडीत होते है, दुःखी है, निर्धन है, फिर भी समाज में इन दोंनो का स्थान एक है। नही करने का तात्पर्य यह है, कि समाज के लोग दोंनो को एक ही

दृष्टि से देखेंगे? अर्थात नहीं। ब्राह्मण गरीब, शोषित होने के बावजूद भी समाज में सम्मानीय है जब कि दलित को वह स्थान नही मिल पाता। आखिर समाज के भीतर ब्राह्मण को उच्च तथा दलित को निम्न ही माना जाता है। इस प्रकार की दोहरी सामाजिक व्यवस्था हमारे समाज में दिखाई देती है। इसलिए दलितों का जो आक्रोश है वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ है। वह तो सामाजिक समानता चाहता हैं। दलित वर्ग को समाज के भीतर बहुत कम महत्व दिया जाता हैं। अर्जुन डांगळे के अनुसार ''सामाजिक व्यवस्था और विषमता के विरुद्ध आन्दोलन खडा करके एक नए समाज का निर्माण करना यह दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है।'' शरण कुमार लिम्बाले के अनुसार, ''दलित साहित्य अपना केन्द्र बिंन्दु मनुष्य को मानता हैं। बाबासाहेब के विचारो से दलित को अपनी गुलामी का एहसास हुआ, उनकी वेदना को वाणी मिली। क्योंकि उस मूल समाज को बाबासाहब के रूप में अपना नायक मिला। दलितो की वह वेदना दलित साहित्य की जन्मदात्री हैं। दलित समाज की वेदना 'मैं' की वेदना नही वह बहिष्कृत समाज की वेदना है।'' दलित होने की वेदनाएँ हृदय में छेद करती है इन वेदनाओं से दिल मचल उठता है, सामाजिक सम्मान के लिए बिन पानी की मछली सी तडप होती हैं। यह सारी वेदना सिर्फ अस्पृश्य भोगता हैं। डॉ. जनार्दन वाघमारे कहते है जो शोषित है वे सब दलित हैं और उन पर किसी भी वर्ण या वर्ग के लेखक के द्वारा लिखे गये साहित्य को दलित साहित्य माना जाय।

द्वितीय अध्याय

दलित चेतना का विकास

दलित साहित्य अन्याय, अत्याचार, उत्पीडन, असमानता पर आधारित हैं। सत्ता और धन, सम्मान पाने के लिए सदैव रक्तपात होता रहा है। सदियोंसे यह होता आ रहा है, लडाइयाँ लडी जा रही और संघर्ष होता रहा। जो पराजित होते थे, वे सबकुछ छोडकर या तो भागते थे, या फिर दास्यता स्विकारनी पडती थी। दलितों के पूर्वजो को विदेशी आक्रमणों, हमलावरों आर्यो के हाथों अपना इस तरह का अंत देखना पडा और तभी से अन्याय अत्याचार के खिलाफ गुलामी से मुक्ति के लिए संघर्ष शुरू हुआ और आज भी वही स्थिति हमारे सामने दिखाई देती है।

प्रारम्भिक भारत देश वैभवपुर्ण देश रहा है, कला संस्कृति और सभ्यता यह विश्व की पहचान बन गई थी, भारत में शिल्पकारो की सभ्यता थी। यह वैभवशाली सभ्यता जो सिन्धु घाटी में मोहनजोदडो से लेकर हडप्पा (पंजाब) काली बंगा, पीली बंगा, लोथल (काढियावाड) बनुमाली (हरियाना) आदि को मिलाकर पुरे देश फैली थी। दलितों के पुर्वजों की इस सिन्धु घाटी की सभ्यता का व्यापारिक संबध अन्य देशों से होता था। यहॉ की सभ्यता ओर संपन्नता देखकर आर्यो ने सिन्धु घाटी की सभ्यता पर शिल्पकारो पर अचानक आक्रमण करके उनके वैभवशाली नगरों को तहस नहस कर दिया। वहाँ के नागरिको का नर संहार किया, धन दौलत सब कुछ लुट लिया था, और जो जीवित रहे, उन्हें दास, दस्यु, दैत्य, राक्षस, असुर, अनार्य, दानव, अस्पृश्य (अछुत) के नाम देकर वर्णव्यवस्था के अंतिम चरण यानी सबसे नीजे 'शूद्र' बना दिया। इसे नियंत्रित करने के हेतू से 'मनुस्मृति' नामक संहिता रचि गई जिसमें तीन वर्णो (ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य) के साथ शूद्र को उनकी गुलामी के लिए सदा के लिए बाँध दिया। उच्चवर्ग की सेवा में ही निम्नवर्ग शूद्र की मुक्ति होगी ऐसा उसके मनमस्तिष्क में भर दिया। अज्ञान, असुविधा, भय के परिणाम स्वरूप शूद्र उच्चवर्ग की सेवा करने लगे । शूद्रो के लिए जीवन और भी कठिन बनाया, ताकि वे इस मानसिकता के ही बने रहे । कभी भी अच्छी सोच विचार उनके मन के भितर न आए इसलिए उन्हे शिक्षा से वंचित रख दिया। सिर्फ उच्चवर्ग ही शिक्षा यह प्राप्त कर सकता है। धन अर्जित करने पर प्रतिबंध लगा दिया, उन्हे पेट की खातीर सिर्फ भोजन की वस्तुएँ दी जाती थी और हमेशा के लिए उच्चवर्ग की सेवा करने पर ही यह सबकुछ प्राप्त होता था। इसलिए वे हमेशा कार्य में मग्न रहते थे।

शूद्रों के गाँव के बाहर रहने, तथा टुटे फुटे छप्पर में रहने, जुठन खाने उतरन पहनने, जमीन पर ही सोने इस प्रकार से शुद्रों को प्रताडित किया गया था, उन्हे वेदमन्त्र सुनने पर कानों में गर्म पिघला शीशा डाला जाता था, वेदमन्त्र पढने पर जिव्हा काट दी जाती थी, तथा सवर्णो को अपशब्द कहने पर पिटा जाता था। नाना प्रकार से शुद्रों को मरण यातना दी जाती थी, इस भय से शुद्र गाँव के बाहर ही अपना गुजारा करता था। वर्णव्यवस्था के अनुसार ही प्रत्येक वर्ण के कार्य निश्चित थे, उसीके अनुसार ही चलना पडता था। दलितों ने यदि दुसरा काम किया तो उन्हें मृत्यदंड दिया जाता था। सदियों से यदि हम देखे तो निम्नवर्ग के साथ यह अमानवीय व्यवहार, अपमान, त्रासदी को इन्होंने सहजता से स्विकार किया है? नही मानव मुक्ति का यह संघर्ष आर्यो के साथ शुरू से ही जारी था। भले ही इस संघर्ष पुर्ण आन्दोलन में कितनी ही पिढियाँ सुली पर चढती गई। हवन कुडों की तेज आग में झोंका दी गई जिन्दा दिवारों में चून दिया गया उनके प्रतिकार को इस तरह से दबाया जाता था। मनुष्य को तो खत्म कर दिया गया लेकिन उनकी आवाज के स्वर की गुँज सुनाई देती थी, और एक जनचेतना निर्माण होती थी, इस के खिलाफ लडने के लिए उत्पीडन व अन्याय के विरुद्ध यह संघर्ष यूँ ही चलता रहा हैं। प्राचीन साहित्य का अवलोकन करने पर यह दिखाई देता है, कि दलित अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन करता रहा है। युगों से कर रहा है और वह आज भी जारी है। भारतीय समाज में दलित युगों से ऐसा बना है जो शोषित पीडित हैं। यह समाज परिस्थिति के परिणाम स्वरूप जीना चाहता है, कुछ मनुष्यों के भितर सहने की शक्ति है, कुछ लोग गुलामी को तोडने का भी प्रयास करते है, यह समाज करूणामय, अविकसित, अशिक्षित, और अंधकारमय जीवन जी रहा हैं। राजकीय, धार्मिक, सामाजिक और अन्य क्षेंत्रो में उसकी उपेक्षा अवहेलना होती रही है। मानव होते हुए भी उन्हें पशु से बदतर माना गया। शुद्र ये नाम भी परिस्थिति दर्शक, जातिदर्शक, या उपेक्षित भाव दर्शक है। सदियों से यह वर्ग सहता आया है, पहले उन्हें 'असुर' कहॉ जाता था, ''आर्यो के भारत में आने के लगभग ४०० से ५०० वर्ष पूर्व असीरियन लोग भी सिन्धू घाटी में बसे थे। इन लोगों को ऋग्वेद में असूर कहा गया अर्थात है। असीरियॉ से असूर शब्द आया हैं। इरान की 'अहुर' जाति और भारत की 'असुर' जाति एक ही जन-जाति की शाखा होने का मत कई विद्धवान प्रदर्शित करते हैं। इराण में अहूर सम्मान जनक है भारत में यह उपेक्षित है।'' इस असूर का उल्लेख तथा पौराणिक कथाओं में

भी महिषासूर, बाणासूर, बकारासूर आदि सहायक कथाएँ भी मिलती हैं। दास-दस्यु का उल्लेख यह ऋग्वेद में मिलता है। श्री अंवतिका प्रसाद मानते है कि आर्यो के आगमन के समय भारत में दास जाति के लोग राज्य करते थे। शूद्र यह एक आदिवासी जाति मानी जाती है, इस मत को 'दलितायन' ग्रंथ में अंवतिका प्रसाद इस तरह प्रकट करते है, ''ऋग्वेद के आर्य काले चर्मवाले लोंगो को पृथकता से देखते, दास इसी संज्ञा से जाने जाते थे, दास ही आगे जाकर शूद्र संज्ञा में समाविष्ट हो गये। धर्म सुत्रों में शूद्रों को 'कालेवर्ण' का कहा गया है।'' शूद्रों की उत्पत्ति के संदर्भ में विद्वानों ने अनेक मत है, शूद्र शब्द का अर्थ 'शु' का अर्थ मार डालना और 'द्र' का अर्थ दौडनेवाला। इसका संबध नागजाति से भी लिया जाता हैं। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने शूद्र के लिए कहा, ''शूद्र आर्यो की जाति में सुर्यवंशी थे। आर्यजाति में ब्राम्हण, क्षत्रिय, और वैश्य तीन वर्ण के अंश थे, शूद्रों का चौथा वर्ण नही था। वे क्षत्रिय वर्ण के अंश थे। शूद्र और ब्राम्हणों में लडाई रही और ब्राह्मणों ने शूद्रों का उपनयन संस्कार करना बंद कर दिया। उपनयन न होने के कारण चौथा वर्ण बन गया। आर्य और अनार्य के दो भेद समाज में प्रचलित होते गये। समयानुसार शूद्र भी दो प्रकार के भेंदो में बँट गए - अबहिष्कृत शुद्र और बहिष्कृत शुद्र।'' द्रविड यह जाति उस समय थी, डॉ. आंबेडकर का मत है, कि 'द्रविड ही नाग है अर्थात द्रविड का अर्थ 'नाग जाति' माना जाता है। द्रविड मानी जानेवाली प्रजा भी यहाँ की एक मूल प्रजा थी, जिसे शूद्रों की श्रेणी में रखा गया है। जो आर्य नही वह अनार्य है, यहाँ की मूल निवासी सभी जातियाँ अनार्य कहलाती हैं। अस्पृश्य वर्णव्यवस्था के परिणाम स्वरूप निम्न जाति को अस्पृश्य कहा गया है, जिसका मूँह देखना तथा परछाई पडना भी पाप माना जाता था। इस तरह से दलित शब्द हमारे सामने आता है जो आधुनिक काल की देन के रूप में आता है।

वैदिक काल में दलितों की स्थिति

दलित साहित्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को केंद्र में रखकर जब हम दृष्टिपात करते है तो वर्णविभाजन का वह काल हमारे सामने आता है। समाज के भितर चार वर्ण निर्माण किए । ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र यह चार वर्ण जिनसे कामों का भी विभाजन किया गया था। सर्वप्रथम ऋग्वेद में शूद्र शब्द का स्पष्ट उल्लेख पुरूष-सुक्त में हुआ है उसमे ऐसा कहा गया है।

''ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

उरू तस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शुद्रो अजायत।।''

ब्राम्हण की उत्पत्ति ब्रम्हा के मुख से क्षत्रिय की बाहू से वैश्य की जंघा से और शूद्र की पैंरो से हुई हैं। जो अच्छे काम करते है वे ब्राम्हण क्षत्रिय वैश्य जातियों को प्राप्त होते है और जो अशुभ काम करते है वे शूद्र माने जाते थे। समाज व्यवस्था को बनाए रखने के लिए वेदों के भीतर इस प्रकार की व्यवस्था यह पहले से ही की गई थी। शूद्रो का जीवन यह बहुत ही यातनामय तथा कठिन हो गया था, शूद्रो ने जुठा अन्न खाना चाहिए तथा सोने के लिए पुराने वस्त्रों का प्रयोग यह करना चाहिए, शूद्रों ने उच्च वर्ग का प्रत्येक कार्य करना चाहिए। यदि शूद्र ब्राम्हण आदि की निंदा करता है, तो दस अंगुल की लोहे की कील गर्म करके उसके मूँह में डाल दी जाती थी। उच्चवर्ग के साथ वह अनुचित बोलने पर उसकी जीभ काट दी जाती थी। इतनी यातनाओं को सहना पडता था। वैदिक काल में ही ऐसे संहिता तथा धार्मिक ग्रंथो का निर्माण हुआ कि शूद्रों के मानवीय अधिकारों पर प्रतिबंध लगाये थे, उन्हे मानव से निचा गिराकर कुत्ते, बिल्ली, कौवे की जानवर श्रेणी में डाल दिया था। उनके मन और मस्तिष्क में यह भाव रखा की उनकी आनेवाली संतान भी उस को नही भूल सकेगी ऐसी भी व्यवस्था संहिता में की गई थी।

इसी तरह ऋग्वेद की एक दुसरी ऋचा से शूद्र के कार्य या श्रम करने का पता चलता है। शूद्रो का जन्म समाज के अन्य तीनो वर्गो की सेवा करने के लिए हुआ है। कुछ विद्वानोंने ऋग्वेद कालीन समाज में दासों (अनार्यो) की गणना शूद्र वर्ण में की गई क्योकि वे शारीरिक दृष्टि से आर्यो से भिन्न थे। ऐ शूद्र अपना उदर निर्वाह अपने गाँव में खेती करते थे और पशू-पक्षियों की शिकार करते थे या मछली मारकर अपना निर्वाह करते थे। शूद्र के संदर्भ में 'काठक संहिता' के अनुसार शूद्र से अग्निहोत्र के लिए गाय का दूध नही निकलवाना चाहिए। किन्तू 'शतपथ ब्राह्मन' सोम यज्ञ में शूद्र को भाग लेने का अधिकार देता हैं। एक दूसरे स्थान पर शतपथ ब्राह्मण का मत है कि यज्ञ के लिए अभिशिक्त व्यक्ति को शूद्र से बात नही करनी चाहिए। वेदोत्तरकाल लगभग ६०० ईसा पूर्व से ३०० ई. पू. में ब्राह्मणो के अतिरिक्त क्षत्रिय और वैश्यो के द्वारा बनाये गये भोजन को खाने में कोई आपत्ति नहीं थी। शर्त मात्र इतनी थी कि उनके बाल और नाखून कटे हो, और वे स्नान

किये हों। इस तरह से शूद्रो के साथ व्यवहार यह किया जाता था। अलग अलग धर्मसुत्रों के भीतर अलग अलग मान्यताएँ दिखाई देती है। ''आपस्तंब धर्मसुत्र' के अनुसार यदि कही वेदपाठ के समय शूद्र खासतौर से चांडाल आ जाए तो वेदपाठ तुंरत बंद कर देना चाहिए। जहाँ शूद्रो का भी उपनयन संस्कार होता था वह अब बंद कर दिया गया। ये विचारतत्व समाज के भीतर समय समय पर धर्मसूत्रों के आधार पर पिरोए जाते थे। शूद्रो को वैदिक साहित्य पढने का सुनने का अधिकार नही था, तो किसी भी प्रकार का वैदिक संस्कार भी वे नही कर सकते थे। उन्हे उस प्रकार का कोई भी अधिकार नही था। शूद्र के अन्तर्गत निषाद आदि शूद्र आते थे जिनके रहन-सहन में न तो स्वच्छता थी और न ही उठने बैठने का ढंग। इतना ही नही वे लोग नगर के बाहर निवास करते थे। इस समय में शूद्रों को अपराध के लिए भी ब्राम्हणों की अपेक्षा अत्यधिक दंड दिया जाता था। गौतम के अनुसार यदि ब्राम्हणत्तर हत्या करे या चोरी करे तो उसे अंधा कर दिया जाए। किन्तु यदि शूद्र ऐसा करे तो उसकी संपत्ति जप्त कर ली जाय और उसे प्राण दंड दिया जाए। यदि ब्राह्मण किसी शूद्र को गाली दे तो उसे कोई दंड नही दिया जाए, किन्तु यदि कोई शूद्र किसी ब्राह्मन पर आक्रमन करे तो उसका वह अंग काट दिया जाय जिससे उसने ब्राम्हण पर प्रहार किया था। आपस्तंब में अपराधों के लिये शूद्रो पर जिन दंडो का विधान किया है उनको पढने से हृदय काँपता हैं। इन दंडों से यह स्पष्ट होता है कि इस काल के समाज में शूद्रों की स्थिति बडी दयनीय हो गयी थी। इस काल में शूद्रों से यही अपेक्षा थी कि वे अपने कर्तव्यों का पालन करे और तीन उच्च वर्ण के व्यक्तियों की सेवा करे तथा कुछ निम्न स्तर के व्यवसाय करके अपने जीवन का निर्वाह करे। जैसे-धोबी, नाई लुहार, और बढई आदि के काम। इस प्रकार इस काल में शूद्रो को सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य अधिकारों से उसे वंचित रखा गया था। बौद्ध ग्रंथो में पाँच हीन जातियों का उल्लेख मिलता है। चांडाल, निषाद, वेण, रथकार, तथा कुक्कस भी। निषाद अनार्य थे, वे गाँव के बाहर रहते थे उन्हे अस्पृश्य समझा जाता था। शूद्र को ओर अधिक कडे नियमों में बाँध दिया। मनू ने शूद्रो के लिए बहुत ही कठिन नियम बनाए हैं। समय के साथ साथ शूद्रों के साथ बहुत ही अमानवीयता का व्यवहार किया जाता रहा जितना उसे प्रताडीत करें उतना कम लगता था। लेकिन शूद्रों को मुख्य समाज से दूर ही रखा गया था।

आदिकाल में दलित चेतना

आदिकाल में वीरगाथात्मक रचनाएँ मिलती है, इस काल में राजाओं को युद्ध के लिए उत्तेजित करने वाली रचनाएँ ही मिलती है। वैसे देखा जाए तो दलित यह शब्द यह आधुनिक है, लेकिन उस प्रकार की पिडा को भोगनेवाले थे, लेकिन आदिकाल का साहित्य दरबारी साहित्य होने के कारन निम्नवर्ग को साहित्य में स्थान नही था। हिंदी दलित साहित्य की अवधारणा पर प्रकाश डालते हुए डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी ने लिखा है कि, ''हिंदी साहित्य की प्रारंभिक अवस्था में दलित साहित्य नाम की कोई विधा न पायी जाती है और न प्रदर्शित होती है। शौर्य और श्रृंगार वर्णन से हिंदी साहित्य की यात्रा प्रारंभ हुई हैं। चारण, भाट अपने राजाओं के दरबार में तुकबंदी, पहेली, कविता कहकर ईनाम बक्सीश पाते थे। दरबारी कवि अपने आकाओं का युद्ध वर्णन, प्रशस्ति गान करते थे। नायिकाओं का नख-शिख वर्णन कर साहित्य की रस धारा बहाते थे। राजपुतों के शासनकाल में हिंदी साहित्य का जन्म हुआ है। उस समय भी समाज में बहुसंख्य दलित थे , जिनके शोषण पर राजाओं का शासन था। जिन राजाओं ने दलितों का जितना अधिक शोषण किया उनका उतना ही प्रतापी शासन काल कहा गया। राजतंत्रीय परिवेश में शौर्य और श्रृंगार के सिवाय दलित चेतना की न कोई गुंजाईश थी न गरिमा। समाज मे दलित बेशुमार थे। किन्तु साहित्य में दलितों की भावना नगण्य थी। इसी काल को हिंदी काल का आदिकाल कहा जाता है। हिंदी साहित्य का आदिकाल दलित साहित्य का शुन्य काल है।''

बुद्ध धर्म दलितों के लिए जेठ की तपती धूप में बरसात की शीतल फुहार बनकर आया था। उसने वर्ण व्यवस्था को नकारते हुए शिक्षा के द्वार सभी अछूतो के लिए खोल दिए। इस काल में जनभाषा पालि में ब्राह्मणवाद के विरुद्ध अपार साहित्य रचा गया जिसने मनुस्मृति पर आधारित वैदिक धर्म की चुले हिलाकर रख दी। सिद्धो और नाथ योगियों ने ब्राम्हणवाद और वर्ण व्यवस्था को नकारते हुए अपनी बानी दोहे और साखी द्वारा अछूत समाज को मरहम लगाने का काम किया। चौरासी सिद्धों में से ३५ सिद्ध शूद्र जाति के लोग थे। बाद में गोरखपंथीयोंने इसी पंरपरो का आगे बढाया है। निर्गुणपंथी संत जनता के बीच अपने धर्म का प्रचार-प्रसार लोकगीतो के माध्यम से करते रहे हैं। ''गंगा के नहाये कहो को नर्क तरिगे, मछरी न तरी जाके पानी में घर है। यहाँ पर यह बात ध्यान में रखना आवश्यक हैं कि

चौरासी सिद्धों में बहुत से मछूए, चमार, धोबी, डोम, कहार, लकडहारे, दर्जी तथा बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे। अतः जाति-पाँति के खण्डन तो वे आप ही थे। नाथ संप्रदाय भी जब फैला, तब उसमें भी जनता की नीची और अशिक्षित क्षेणियों के बहुत से लोग आए जो शास्त्रज्ञान संपन्न न थे, जिनकि बुद्धी का विकास बहुत सामान्य कोटी का था। पर अपने को रहस्यदर्शी प्रदर्शित करने के लिए शास्त्रज्ञ पंडितों और विद्वानों को फटकारना भी जरुरी समझते थे।''

इसप्रकार नाथपंथियों का प्रभाव हिंदू तथा मुसलमानों पर पडा हैं। तथा इस निम्न वर्ग अर्थात जिसे आज हम दलित वर्ग कहते है उसका सूत्रपात ऐतिहासिक तौर पर आदिकाल या उससे पूर्व से हो जाता है।

वर्णव्यवस्था जातीवाद, अमानवीय भेदभाव और ब्राम्हणों के सर्वोच्च अधिकार को अपनी रचनाओं से चुनौती देने वालों में सिद्ध दलित कवि है जैसे कंकारिया, मीनपा, चमरिया, खडगपा, धनगपा, शातिपा, छत्रपा, धमिपा, कुचिपा, महीपा, जोगिया, अनंगपा, कंजरिपा, गुंडरिपा, निर्गुणता आदि। इन्ही दलित सिद्ध कवियों ने सामाजिक असमानता धार्मिक कर्मकाण्ड, झूठी वर्ण व्यवस्था और ब्राह्मण की सर्वोच्चता के विरुद्ध अपनी साधना और साहित्य आराधना से मानवतावाद की नई धरती और नए समाज की संरचना की हैं। दलित वर्ग सदियों से प्रताडित है, लेकिन समय ने अपनी करवट बदल दी। दलितों में थोडीसी चेतना जागृत हो जाती है, जो १२वी शताब्दी में कर्नाटक में प्रांरभ हुई है। श्री. एम जी. वेंकटेश ने सराना मुवमेंट की चर्चा करते हुए इस प्रकार लिखा है कि - ''१२वी शताब्दी को एक महत्वपूर्ण नवजागरण माना जाता है। न केवल कर्नाटक के सांस्कृतिक इतिहास में ही बल्कि संपूर्ण देश में। यह वह समय है जिसमें कि लोग जाति, संप्रदाय, धर्म तथा रंगभेद को छोडकर परस्पर एक-दुसरे के निकट आए। ई. एम. एस. नाम्बुदरी पाद ने यह मूल्यांकन किया कि १२वी के पहले जो आन्दोलन अधूरा रह गया वह फिर से शुरू हो गया। उस समय के साहित्य को 'वचन साहित्य' कहते हैं। इसमें सैकडों कविताएँ आम भाषा में लिखी गई थी। इस आंदोलन के केंद्र में रहनेवाले जैसे - मोची, मछुवारे, धोबी, दर्जी आदि लोग थे। सरोना मुवमेंट के लोग शिव की आराधना करते थे। इसलिए इन्हें 'वीर सैवास' कहा जाता था। वासव-ना इस आन्दोलन का मुख्य नेता था, वह ब्राह्मण था, किन्तु अंधविश्वासों को तोडकर बाहर आया था। इस समय जाति-भेद को तोडा गया, जिसमें एक ब्राह्मण लडकी ने मोची

लडके से शादी कर ली और मोची को हाथी के नीचे कुचलवा दिया गया।'' जिसके परिणाम स्वरूप इस आंदोलन ने भयंकर रूप धारण कर लिया था, और तभी से दलित आन्दोलन को विधिवत शुरुवात हुई, और वह तेजी से आगे बढता गया। इसी तरह सिद्धनाथ कवियों में बहुत से शूद्रनाथ सिद्ध कवि थे। जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा जाति व्यवस्था और ब्राम्हणवादी संस्कृति और साहित्य का जमकर विरोध किया ।

मध्यकाल में दलित चेतना

मध्यकाल में धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक स्थिति बडी शोचनीय थी, समाज में सांमतो की जिंदगी बडी वैभव संपन्न थी, समाज के भीतर वर्ण भेद था। अमीर जब गरीबों पर अत्याचार करते थे, तो गरीब उसे पूर्व जन्म का पाप मानकर सहते थे, और जीवन को जीते थे। ईश्वर की पूजा आराधना आंरभ हो रही थी, इस दुःख यातना से मुक्ति यह मिल जाए इसलिए सिद्धो और नाथों के बाद हिन्दू और मुसलमान दोंनो के लिए भक्ति का मार्ग स्वीकार कर शुरुवात हो गई थी। आचार्य शुक्लजी ने लिखा है – ''वज्रयान के अनुयायी अधिकतर नीची जाति के थे। अतः जाति पाँति की व्यवस्था से उनका असंतोष स्वाभाविक था। नाथ संप्रदाय में शास्त्रज्ञ विद्वान नहीं आते थे। इस संप्रदाय के कनफट रमते योगी घर के भीतर के चक्रों, सहस्र दल कमल, ईला, पिंगला नाडियों और करामत दिखाने पर अपनी सिद्धाई की धाक सामान्य जनता पर जमाये हुए थे। वे लोग ऐसी बाते सुनाते आ रहे थे कि वेदशास्त्र पढने से क्या होता है? बाहरी पुजा-अर्चा की विधियाँ व्यर्थ है। ईश्वर तो प्रत्येक घर के भीतर हैं। अन्तर्मुख साधनाओं से ही वह प्राप्त हो सकता हैं। हिंन्दू-मुसलमान दोंनो एक हैं। दोनो के लिए सूत्र साधना का मार्ग भी एक ही है, जाति-पाँति के भेद व्यर्थ खडे किये गये है इत्यादि।'' मध्यकाल में दलित चेतना दिखाई देती है, मध्यकाल के प्रमुख कवि कबीर है, उन्होंने अपने पदो के द्वारा सामाजिक विसंगति, भेदभाव को व्यक्त किया है, वे सदा निम्नवर्ग के हिमायती रहे है, जाति-पाँति व छुआछूत के भेद भाव का वे विरोध करते आये हैं। कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार किया है।

''पंडित मिथ्या करहू विचारा, न वह सृष्टि न सृजन हारा।।

जोति – स्वरूप काल नहीं, उहँवॉ, वचन न अहि शरीरा।

थुल अथुल पवन नहि पावक, रवि शशि धरनी न नीरा।

रैदास भी कबीर के समकालिन थे उन्होंने भी अपनी पिडा तथा समाज की विषमता को अपने काव्य के भीतर अभिव्यक्त किया है, इस तरह साहित्य में दलित चेतना दिखाई देती हैं। रैदास चमार थे, दादू उन्हे मोची या धूनिया कहा जाता था। निर्गुन संत परंपरा में जीतने भी संत आये है, वे सब निम्न जाति से संबंध यह रखते है, वे अपने काव्य में समाज में प्रचलित कुरीति-रिवाजों, जाति-पॉति व छुआ-छूत के भेदभाव का कडा विरोध उन्होने किया है। समानता, सद्भावना और भाईचारे पर जोर दिया है। इस संबध में महाराष्ट्र में जहाँ सन्त नामदेव, सन्त एकनाथ, सन्त तुकाराम, समर्थ रामदास, चोखामेळा ने हिंदी में अपनी रचनाएँ की; वहीं उत्तर भारत में सन्त कबीर गुरू रविदास, गुरूनानक, दादू मुलकदास, सुन्दरदास, रज्जब आदि संन्तो ने सरल हिंदी भाषा में पाखण्डवाद बाह्य आडम्बर की खुलकर आलोचना की। सन्त रैदास चर्मकार थे पर उन्होंने अपनी अध्यात्मक शक्ति से काशी के पण्डे पुजारियों, सन्तो और सामन्तों को प्रभावित किया और अछूत जाति के लोगो में स्वाभिमान जागृत किया। आत्मग्लानि में डूबी दलित जातियों में अपनी जातियों के प्रति आत्मगौरव बढाया। गुरूनानक देव से लेकर सिखों के दसवे गुरू गोविन्द सिंह जी ने ब्राम्हणवाद, कर्मकाण्ड, और मानवीय भेदभाव के खिलाफ वाणी लिखकर सन्तो के कार्य को आगे बढाया। सभी सन्तों की वाणी और लेखनी में दलितों के प्रति एक आत्मीय भाव दिखाई देता है उन्होने वर्णवाद और अवतारवाद को चुनौती दी है, श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते है, ''हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में रैदास और कबीर जहाँ एक और वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध खडे दिखाई पडते है, और सामाजिक बदलाव के लिए संघर्ष करते है वहीं वे आध्यात्मिक दलदल में फँसकर उसी सांमती व्यवस्था में विलीन हो जाते है जिसने वर्णव्यवस्था को पुख्ता किया है। उनकी क्रान्तिकारिता सामाजिक स्तर पर गहन अभिप्रेरणा उत्पन्न करती हैं। हिंदी साहित्य में विरोध स्वर को उँचा करती है और आज भी प्रांसगिक बनकर 'दलित' चेतना के लिए प्रेरणा बनती है। लेकिन रहस्यवाद, भक्तिवाद, निर्गुणवाद, आदि उन्हें उसी परंपरासे जोड देते है जिसके विरुद्ध दलित साहित्य खडा है।'' भक्तिकाल का साहित्य जनता का साहित्य कहा जाता है, इसलिए जनता का सुख-दुःख, प्रताडना, अवहेलना को उजागर करने का प्रयास भक्तिकाल के कवियों ने किया है। अधिकत्तर कवि निम्नवर्ग से ही आये है, जैसे कृष्णदास शूद्र थे। कुछ मुसलमान कवि तथा

निम्नवर्ग के कवि भी देखने को मिलते है। अली मुहम्मद खॉ, 'प्रीतम', 'भिखारीदास, रसलीन, क्षत्रसिंह कायस्थ, ये कवि समाज की वास्तविकता को काव्य में लिखते थे। वर्षो से चली आ रही जाति-पाँति तथा उँच-नीच की भावना के खिलाफ इन विद्रोही कवियों ने आवाज उठाई। मध्यकाल का भक्ति आन्दोलन जाति-व्यवस्था का समर्थन नहीं करता और ईश्वर भक्ति के आधार पर सभी जातियों, उपजातियों, की समानता घोषित करता है। कबीर जैसे विद्रोही कवियों ने जातिवाद पर बहुत लिखा आक्रमण किया। और लगभग संत काव्य में जातिवाद के विरोध में आवाज उठती है। इस युग के कवियों ने समाज के भीतर मानवतावादी स्वर की प्रधानता अधिक दिखाई देती है समाज के भीतर नयी क्रांति की शुरुवात मानी जाती है।

आधुनिक काल में दलित चेतना

भारत में यवन, हुण, कुषाण, मंगोल आदि विदेशी हमलावरों ने आकर यहॉ की राजसत्ता सम्भाली, पर किसी ने भी अपनी हुकूमत में अछूतों की स्थिति सुधारने का काम नही किया। लेकिन १९वी शताब्दी में साहित्य की दलित धारा भारत की लगभग सभी भाषाओं में पुनः उभरती दिखाई देती हैं। इसका कारण यह था कि इस समय तक भारत में अंग्रेजी राज कायम हो चुका था और ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से अछूतों में शिक्षा का प्रकाश पहुँचने लगा था। इस नव-जागरण में प्रायः सभी भाषाओं में दलित रचनाकार अपनी त्रासदी को लेकर लिखने लगे थे। शिक्षा के कारण उन्हे आत्मबोध होने लगा और वे अपनी त्रासदी को लिखने लगे, समाज को मार्ग दिखाने का प्रयास हो रहा था, दलित साहित्य मराठी भाषा से हिंदी भाषा की ओर आया है। ज्योतिबा फुले से होकर 'स्वामी अच्छुतानन्द' 'हरिहर'ने उत्तरी भारत में दलितो में स्वाभिमान जगाया है। वे हीरा डोम के पहले दलित रचनाकार है और हिंदी साहित्य के तथाकथित विद्धान और प्रवक्ताओं का ध्यान इस ओर नही गया। स्वामी अच्छुतानन्द जी का जन्म सन १८७६ में उत्तर प्रदेश के फरुखाबाद जनपद के सौरिख गाँव में हुआ था। कवि, नाटककार के साथ-साथ स्वामी जी पत्रकार भी थे। उन्होंने सन १९२५ में 'आदि हिन्दु' पाक्षिक तथा १९२६ में 'सन्त' मासिक पत्र का प्रकाशन और सम्पादन किया था। उनकी पत्रकारिता ने उत्तरी भारत के दलित वर्गो में नई चेतना का संचार किया था। वे दलित पत्रकारिता के जनक थे। स्वामी अछूतानन्द के ग्रंथों में मायानन्द, बलिदान, रामराज्य न्याय आदिंवश का डंका,

आदिवंश काव्य इत्यादि ऐसे प्रमुख ग्रंथ है जिनकी आज भी दलित चिंतको में बेहद मांग हैं। कुछ दलित चिंतको के अनुसार मध्यकाल के दलित सन्त कबीर और रैदास की परंम्परा में स्वामी अच्छुतानन्द आते हैं। उनके काव्य में कबीर और रैदास की दलित चेतना का ओजपूर्ण विकास देखने को मिलता हैं। 'अछुत' और 'हरिहर' स्वामी जी ने दोंनो नामों से कविताएँ लिखी है। उन्होने सचमुच दलित कविता को एक नया आयाम और धरातल प्रदान किया था। दलित चिंतन की इस बदलती परम्परा के विकास के युग को हम स्वामी अछुतानन्द युग का नाम भी दे सकते है। हीरा डोम भी इसी युग के एक सशक्त कवि है। इस युग में अनेक कवि हो गये केरल में जाति से मछुआरे अछुत कवि के. पी. करूप्पन हुए, जिन्होंने सन १९१३ मे शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन का नया विन्यास करते हुए 'जाति कुंभी' नाम से लंबी कविता लिखी। इस युग में अनेक अच्छे कवि हुए जिनमें पं. बख्शीदास, बंशीराम मुसाफिर, स्वामी शंकरानन्द, केवलानन्द, अयोध्यानन्द दण्डी, मौजी लाल मौर्य और जनकवि बिहारीलाल 'हरित' मुख्य रूप में उल्लेखनीय है। प्रसिद्ध कृति रविदास रामायण के रचयिता पं. बख्शीदास मेरठ के रहनेवाले थे रविदास पर उनकी दृष्टि परम्परावादी थी। शंकरानन्द स्वामी अच्छुतानन्द से प्रभावित थे, केवलानन्द दलित चेतना के सशक्त कवि माने जाते है उनका एक गीत 'मनुजी' अत्यन्त प्रसिद्ध है। अयोध्यानाथ दण्डी ने अछुत सत्याग्रही वीरों की अमर कथा तथा मौजीलाल मौर्य एक लोक कवि थे। डॉ. अम्बेडकर के जीवन चरित्र पर 'भीमायण' की रचना की थी। बिहारी लाल 'हरित' जन कवि के रूप में विख्यात हैं। भीमायण, बुद्धायण, दलितो के अभिवादन के लिये 'जयभीम' कहने की परंपरा हरित जी ने डाली थी। इन कवियो एंव उनकी रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विकास युग के कवि दलित चेतना के कवि तो थे पर यह चेतना उतनी क्रांन्तिकारी नही थी, जितनी वह कबीर के समय थी। उत्तर भारत में यह धारा धीमी गति से दिखाई देती है लेकिन डॉ. बी. आर. आंबेडकरने १९२० में 'मुक नायक' पत्र प्रांरभ किया इसके माध्यम से उन्होने दलितो के स्वाभिमान को जगाया सदियों से अज्ञान, अपमान में जीवन था उसे हक्क के रूप में जीना सिखाया – शिक्षित बनो, संगठित हो, और संघर्ष करो ' का नारा दिया। १९२८ में डॉ. आंबेडकर ने महाड (महाराष्ट्र) में अछुतो के लिये सार्वजनिक तालाब का पानी लेने हेतु सत्याग्रह किया। भारतीय इतिहास में यह पहला अवसर था जब अछुतो की विशाल संख्या अपने

मानवाधिकारों के लिये घरो से बाहर निकलकर सडकोंपर आयी थी। दलित साहित्य के आधुनिक काल को मुक्तिकाल भी कहा जाता है। काल विभाजन की दृष्टि से हिंदी दलित साहित्य के इस मुक्ति काल को तीन धाराओं में विभक्त किया जा सकता है १) आर्यसमाजी २) गांधीवादी ३) अम्बेडकरवादी दलित मुक्ति आन्दोलन में तीसरे पायदान में अम्बेडकरवादी धारा सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। अम्बेडकरवाद के इस युग ने दलितों में नया जोश निर्माण किया था। स्वामी अच्छुतानन्द और पेरीयर रामास्वामी नायकर पर लिखी पुस्तकों ने भी इस युग की दलित चेतना को सशक्त बनाया था। हिंदी में दलित कविता की बाकायदा शुरुवात बीसवी शताब्दी के आठवें दशक में हुई। इसकी प्रेरणा डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा तो थी। श्री माताप्रसाद ने 'भीम शतक', 'एकलव्य' डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी 'द्वार पर दस्तक', 'सवालों के सुरज' डॉ. सोहनपाल 'सुमनाक्षर' भारतीय दलित साहित्य अकादमी दिल्ली के अध्यक्ष दो काव्य संग्रह प्रकाशित हो गए है। 'अंधा समाज बहरे लोग' सिन्धू घाटी बोल उठी' मोहनदास नैमिशराय अपनी आत्मकथा – 'अपने अपने पिंजरे' (दोंनो भाग) डॉ. दयानन्द बटोही, डॉ. जयप्रकाश कर्दम – हिंदी दलित कविता के एक सशक्त हस्ताक्षर है। काव्य संग्रह 'गुँगा नही था मैं'' डॉ. मनोज सोनकर, कँवल भारती, डॉ. कुँसूम वियोगी, डॉ. एन. सिंह, डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, श्री. ओमप्रकाश वाल्मीकि उपन्यास के क्षेत्र में डॉ. धर्मवीर का 'पहला खत' बलवत्त सिंह 'चार्वाक' का 'भुखी चिंगारी की लाल मुस्कराहट' जयप्रकाश कर्दम का 'करूणा' तथा प्रेम कपाडिया का 'माटी की सौंगन्ध'। दलित चेतना का पहला उपन्यास इस संबध में दलित साहित्य के प्रख्यात आलोचक डॉ. एन. सिंह ने लिखा है कि, 'जय प्रकाश कर्दम का उपन्यास 'छप्पर' एक परिवर्तनकारी उपन्यास है, जिसे मैं हिंदी का पहला दलित उपन्यास मानता हूँ।'' दलित नाट्य साहित्य में सबसे अधिक नाटक श्री माताप्रसाद ने दिए है – 'धर्म के नाम पर धोका, अछूत का बेटा। आत्मकथाओं में डॉ. भगवानदास की आत्मकथा 'मैं भंगी हूँ, कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', 'तिरस्कृत' सूरज पाल चौहान। निंबध लेखन में भी डॉ. पुरुषोत्तम 'सत्यप्रेमी' का सर्वप्रथम ललित निंबध संग्रह 'पत्ते क्यों गिरते है', श्री कँवल भारती का 'लोकतंत्र में भागीदारी, डॉ. सुशीला टाकभौरे का निंबध संग्रह 'परिवर्तन जरूरी है' डॉ. एन. सिंह का निंबध संग्रह 'मेरा दलित चिन्तन', डॉ. दयानन्द बटोही का निंबध संग्रह 'साहित्य और सामाजिक क्रांन्ति। इन

रचनाओं के द्वारा दलित चेतना हमारे सामने आती है।

भारतीय समाज में दलितों का स्थान

भारतीय समाज व्यवस्था में दलितो का स्थान दयनीय और भयानक है। समाज व्यवस्था में दलित एक घटक होने के बावजूद उसे गाँव के बाहर ही रखा जाता, भारतीय समाज में सबसे ज्यादा परिश्रमी, सेवक यही वर्ग था, लेकिन समाज ने काम खत्म होने के बाद उसे दूर किया। जैसे गन्ना चुसने के बाद फेंक दिया जाता है। जब काम होता तो उसे नजदीक किया जाता था, काम खत्म हो जाने पर उसकी परछाई भी अपवित्र हो जाती थी। भारतीय समाज में दलितो की दयनीय स्थिति का एक कारण यह है कि, मनु के द्वारा बनाया गया भारतीय समाज का ढाँचा दलित वर्ग के लिए एक अभिशाप सा बनकर रह गया, जिसे इस वर्ग को आज भी भुगतना पड रहा हैं। मनु की वर्णव्यवस्था आज भी समाज के भीतर दिखाई देती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र और उनके कार्य भी बताए है, लेकिन आज समाज में रहते हुए अनजाना व्यक्ति सबसे पहले मित्रता करते समय सामनेवाले व्यक्ति से नाम पूछता है, गाँव पूछता है, और उसके बाद वह व्यक्ति तय करता है कि इसके साथ दोस्ती रखनी है या नही। क्योंकि समाज के भीतर दलितों की स्थिति भयानक है, सदीयों से यही परंपरा समाज के भीतर चल रही है, भारतीय समाज विश्व के अन्य समाजो की अपेक्षा अपनी विशिष्टता रखता है, यही परम्पराएँ एक पिढी से दुसरी पीढी को हस्तान्तरित की जाती है। ये समूह की आदते है, व्यक्ति विशेष की कोई परंपरा नही होती। व्यक्ति जब इस समूह को छोडता है (मृत्यू की स्थिति में) तो उसकी आदते भी छूट जाती है। लेकिन समूह या समाज बराबर चलते रहते है और इसलिए परंपराएँ भी चलती है। पुरानी परम्पराएं नई परम्पराओं को स्थान देती हैं।

प्राचीन काल में दलितो की स्थिति थोडी अच्छी थी, इस दृष्टि से उनके नीति नियमों में काफी ढील थी। आज की दृष्टि से छूआ-छूत का इतना भेदभाव नहीं था, जितना मनु युग में था। समाज में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के भीतर इतना अंतर कैसे आ गया इसका स्पष्टीकरण 'संस्कृति के चार अध्याय' के अन्तर्गत क्षितिजमोहन सेन ने इस प्रकार किया है - ''पुराने जमाने में इतना बंधन नहीं था। कलि के पहले असवर्ण विवाह भी चलता था और शूद्र के हाथ से पकवान भी ब्राह्मण लोग ग्रहण करते थे। कलियुग में यह निषिद्ध कैसे हुआ? शाम शास्त्री कहते है कि बुद्ध और जैन धर्म का वैराग्य-प्रधान मत और कृच्छाचार इसके ही कारण हैं। ऊँचे वर्ण के

लोंगो ने जीव हिंसा छोडी, शूद्रों ने नही। इसीलिये इनके हाथ का अन्न निषिद्ध हुआ।'' समाज के भीतर धीरे धीरे एक एक परंपरा दलित विरोधी होती दिखाई देती है। समाज को वर्गा में बाँट दिया गया, उच्चवर्ग ने निम्नवर्ग को सिर्फ कठीन कार्या के लिए ही चुना था, और वही काम उनको मिलता था, समाज व्यवस्था इसतरह से बनती जा रही थी। ''डॉ. नरेन्द्रसिंह लिखते है – ''समाज मनुष्य के पारस्परिक संबंधों का सामाजिक रिश्तों का एक जाल है। भारतीय समाज का मेरुदंड वर्णाश्रम व्यवस्था रही है।''

समाज व्यवस्था ने दलितो को हमेशा नकारा है, उसका शोषण करना उच्चवर्ग का अधिकार बन गया, मानो उन्हे ऐसा महसूस होने लगा कि यह दलित सिर्फ हमारी सेवा के लिए ही समाज में है। वैदिक काल से लेकर आज तक के उनके शोषण में समानता ही नजर आती है। दलितवर्ग के शोषण की वैदिककाल से आज तक की समानताओं को उद्‌घाटित करते हुए श्री नरेंद्रसिंह लिखते है – ''ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्गो पर आधारीत चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ऋग्वेद काल से लेकर विभिन्न मोड लेती हुई आज तक किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। आज के दलित वर्ग और उस समय के शूद्र में विशेष समानता दिखाई देती है।'' उच्चवर्ग यदि कोई अपराध करता है, तो सजा कम होगी या उसे बचाने का प्रयास किया जाता है। लेकिन दलितों से कोई अपराध होता है, तो वह उस सजा को पुरा भोगता है, उसे बचाने का कोई भी प्रयास समाज व्यवस्था में नही होता उसे समाप्त करना यही उद्देश्य रहा है। दलितों को अपमान, पीडा को लेकर ही जीवन जीना पडता है, उनके जीवन में सुख कम और दुःख ही अधिक है। ''इसी का स्पष्टीकरण देते हुए नरेन्द्रसिंह लिखते है – ''प्राचीनकाल से ही हरिजनों की स्थिति समाज में निम्न थी। वे अछूत माने जाते थे तथा उन्हे मुख्य आबादी से दूर रखा जाता था। आज ऐसा किसी भी रूप में संभव नही है। जबकि साधन संपन्न सवर्ण आज भी वह स्थिति चाहते है। ऐसे में उनके एवं हरिजनों के मध्य टकराव होते है। इसी स्थिति में शासन तंत्र के अप्रभावी होने के कारण साधन संपन्न वर्ग इन पर तरह-तरह के अत्याचार करने में सफल हो जाता है।'' भारतीय समाज में दलित वर्ग की स्थिति बडी भयानक थी, किन्तु धीरे-धीरे समय बदलता गया, दलितो के मसीहा के रूप में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जैसे महापुरुषों का आगमन हुआ। उन्होंने दलितों में आत्मसम्मान की भावना को उजागर करने का कार्य किया। दलितों में शिक्षा का

महत्व रहन सहन स्वच्छता का महत्व बतलाया और आंबेडकर ने अपना संपूर्ण जीवन दलितो के उद्धार के लिए अर्पण किया है।

दलित साहित्य का उद्देश

दलित साहित्य का उद्देश सामाजिक विषमता को दूर करना, दलितो को उनकी अस्मिता की पहचान कराना, उन्हें अपने मानवीय अधिकारों से परिचित करवाना, उनमें चेतना जागृत करना, उनमे स्वाभिमान जगाना, उन्हे एक नयी आवाज प्रदान करना भी है। दलित साहित्य का मुख्य उद्देश दलितों को अपने मुक्तिपथ पर अग्रेसर करना है। उनमे जीवन से लडने की क्षमता को विकसित करना है। 'दलित साहित्य वह विचार है जो मानव को प्रतिष्ठित करना चाहता है। देश, धर्म, जाति के ऊपर उठकर महानता प्रदान करना चाहता है। दलित साहित्य का आन्दोलन एक ऐसा आन्दोलन है जो क्रांति के माध्यम से समता, स्वंतत्रता, बन्धुत्व और सामाजिक न्याय आदि मूल्यों की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है। दलित साहित्य मनोरंजन से दूर रहनेवाला है, तथा मानव को केंद्र में रखकर लिखा गया साहित्य इसका उद्देश हिंदी साहित्य की दुनिया में अपने लिए जगह बनाना नही है बल्कि दलितों के जीवन यथार्थ को प्रस्तूत करते हुए जाति व्यवस्था के अंत के साथ पुरे भारतीय समाज की मुक्ति चाहता है।

भगवान गौतम बुद्ध के विचारो को आत्मसात कर अपने जीवन मार्ग पर चलना निम्नवर्ग के लिए आवश्यक है। भाग्य पर नही कर्म पर विश्वास रखना चाहिए। दलित साहित्यकार ईश्वर संबधी सभी अवधारनाओं का सख्त विरोध करते है। उनका मानना है कि ईश्वर को किसी भी रूप में यदि स्विकार किया तो समाज के लिए हितकारक नही होगा। ईश्वरीय शक्ति का बोध हुआ तो समाज में लोकपरलोक, पाप-पुण्य, पुनर्जन्म जैसे अंधविश्वासों का फैलाव होगा। फलतः दलितो के शोषण व उत्पीडन का मार्ग प्रशस्त होगा। इसलिए दलित साहित्य में एक नया विचारप्रवाह समाज के सामने आ रहा है। दलित साहित्य का यह मुख्य उद्देश हमारे सामने आता है। अन्याय, अत्याचार, भेदभाव, असमानता, आदि को खत्म करके न्याय, समानता व मानववाद को विजेता के रूप में देखना चाहता है। दलित साहित्य के गर्भ में भी सघन पीडा का स्पंदन है। दलित साहित्य में निहित विद्रोह, निषेध एवं नकार का मूल उत्स भी वेदना ही हैं।

इस संदर्भ में महिपसिंह एवं चंद्रकान्त बांदिवडेकर जी संयुक्त रूप से मानते है कि ''दलित साहित्य विद्रोह का साहित्य, अर्थात वह विद्रोही साहित्य है। विद्रोह यानी द्वेष, विद्रोह यानी शत्रूता, विद्रोह यानी विप्लव। 'दलित साहित्य' एक ओर वंचना के कारण होने वाली हृदय विदारक यातनाओं को उद्‌गार प्रदान करता है और उसके साथ जिस सामाजिक व्यवस्था ने दलितों पर यह जीवन लादा उस समाज व्यवस्था के प्रति द्वेष तथा शत्रूता व्यक्त करता है हिन्दू श्रद्धाओं पर प्रहार करता हैं और अपने स्वतंत्र अस्तित्व का उद्‌घोष करता है। दलित साहित्यिक जाति व्यवस्था को नष्ट करना चाहते है। सामाजिक विषमता का निर्मुलन करना चाहते हैं वे सामाजिक परिवर्तन चाहते हैं। दलित साहित्य की प्रांरभिक अवस्था में कम से कम दलित लेखको को निःसंदेह ऐसा लगता था कि साहित्य न केवल मानवीय अनुभवों का निवेदन अथवा प्रकटीकरण ही करता है बल्कि समाज को क्रांतिप्रवण करने का वह एक समर्थ माध्यम भी हैं। अतः दलित साहित्य अपनी विद्रोह की भूमिका अपरिहार्य और आवश्यक मानता है।''

तृतीय अध्याय

दलित चेतणा के प्रेरणा स्त्रोत

दलित साहित्य की अवधारणा

मानव की चेतना में बसी हुई एक सहज और स्वाभाविक प्रवृत्ति है 'स्वतन्त्रता'। तीन हजार वर्ष पूर्व में लिखे गए 'मनुस्मृति' नामक ग्रंथ में वर्ण व्यवस्था के परिणाम स्वरूप सबसे नीचली जाति अस्पृश्य के लिए विधि-विधान का निर्धारण किया गया। इस व्यवस्था के आधार पर चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में दलित वर्ग को उच्चवर्ग के सभी प्रकार के हीन कार्य करणा यही उसके जीवन का कार्य है। यही करने पर जीवन से मुक्ति मिल सकती हैं, इस तरह यातना और पिडा का जीवन वह जीता है। यह दलित वर्ग घृणा, त्रासदी, दास्यता और पीडा को आज भी झेल रहा हैं। यह दलित जीवन संघर्ष, विद्रोह और नकार की भूमि मे निर्माण हुआ है दलित विचारको, चिन्तकों और लेखको के भीतर जगे आत्मबोध के परिणामस्वरूप उपजा साहित्य ही दलित साहित्य के नाम से उजागर हुआ। आज हम देखते है कि दलित साहित्य एक आंदोलन के रूप में १९६० के आसपास मराठी भाषा में आरंम्भ हुआ तथा मराठी के दलित साहित्यिक आंदोलन ने अन्य भारतीय भाषाओं को प्रभावित किया। लेकिन सही मात्रा में दलित साहित्य की गुँज १९८० के बाद साहित्य में दिखाई देने लगी थी। इसके पहले भी 'दलित' को लेकर लिखा गया किन्तु सहीमात्रा में वेदना इसके बाद ही दिखाई देती है। मराठीभाषा में साहित्य की पृष्ठभूमि निर्माण करने की प्रेरणा डॉ. भीमराव अम्बेडकर, महात्मा ज्योतिबा फुले आदि के विचारों का परिणाम माना जाता है। उन्ही के कारण दलित साहित्य लिखा गया है, मराठी में मराठी भक्त, संत, कवियो की भी एक परंपरा मानी जाती है। उत्तरी भारत में भी संत परंपरा व भक्ति आंदोलन का स्वरूप ऐसा रहा कि उसमें दलितभावनाओं को धार्मिक स्वरूप में अभिव्यक्ति मिली। आधुनिक दलित साहित्य की जडे यह कबीर और रविदास की वाणी में देखी जा सकती है। इसलिए कबीर और रविदास हिंदी दलित साहित्य के, यह कहना चाहिए कि उत्तर भारत के दलित साहित्य के अग्रदुत हैं। यूँ तो जाति व्यवस्था या अस्पृश्यता का विरोध दार्शनिक चार्वाक से हमारे सामने आता है। महात्मा बुद्ध से डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर दलितों के मसिहा माने जाते है। दलितों के प्रति संवेदनाओं तथा मानवतावादी भाव को लेकर दलित साहित्य हमारे सामने आता है। भारतीय साहित्य का आरंभ करनेवाले

संस्कृत के कवि वाल्मीकि माने जाते हैं। वाल्मिकी भी दलित है, किन्तु न तो वाल्मिकि रामायण में और न अन्य संस्कृत साहित्य में दलितो के प्रति कोई विशेष सहानुभूति दिखाई देती है। पालि साहित्य में गौतम बुद्ध ने दलितो के प्रति करूणा का भाव दिखाया है। वहीं महात्मा फुले की सोच तथा डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा के प्रभाव में, सीधे आन्दोलन के गर्भ से उत्पन्न हुआ और ग्रामीण स्तर तक भी लोक साहित्य, लोककला, नाटक, जलसा आदि के जरिए दलित चेतना के विकास का एक कारगर हाथियार बना। मराठी में दलित चेतना आन्दोलन जब शिक्षा संगठन, संघर्ष और साहित्य के बल पर आत्मसम्मान, स्वाभिमान और समाज में परिवर्तन की तरफ बढ रहा था, तभी स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रभाव के अन्तर्गत हिन्दी पट्टी में चलाया जा रहा अछुतोद्धार का अभियान सुधारात्मक था। वे वर्णव्यवस्था को सुरक्षित रखते हुए समाज के भीतर का भेदभाव मिटाने की बात तो चलाते थे, लेकिन मनु द्वारा बनाई गई वर्ण व्यवस्था को खत्म करने की बात नहीं करते थे। इसके विपरित महाराष्ट्र में डॉ. बाबासाहब आंबेडकर मनुवादी विचार को नष्ट करने की बात और प्रयास कर रहे थे। इसलिए उन्होंने मनुस्मृति को भी जलाया और एक नया विचार समाज के सामने आंदोलन के रूप में रखा है। महाराष्ट्र में दलित नेता, और साहित्यकार अपने बल और संगठन के आधारपर डॉ. आंबेडकर के नेतृत्व में समाज के भीतर सामाजिक क्रांति कर रहे थे। उनके सामने डॉ. आंबेडकर तथा उनका मूलमंत्र था, इसी कारण यहाँ दलित साहित्य एक क्रान्तिकारी और स्पष्ट समझ के साथ विकसित हुआ और आज यह महाराष्ट्र में मुख्यधारा का साहित्य बन गया है। जबकि हिंदी पट्टी में भारतेन्दु काल शैशवावस्था के दायरे में ही माना जाता हैं। वही मानसिकता का परिणाम यह दिखाई देता है, किन्तु हिंदी में दलित साहित्य यह मराठी भाषा के प्रभाव की देन तथा विचारों का आधार माना जाता है। केवल हिंदी साहित्य में ही नहीं बल्कि कन्नड, तमिल, तेलगू, गुजराती, मलयालम, पंजाबी, मराठी आदि सभी भारतीय भाषाओं में दलित जीवन को चित्रित किया गया। मराठी भाषा में मुख्यधारा के रूप में देखा जाता है किन्तु हिंदी में ओमप्रकाश वाल्मिकि की आत्मकथा 'जूठन' व मोहनदास नैमिशराय का 'अपने-अपने पिंजरे' यह साहित्य दलित अवधारणा को लेकर हमारे सामने आते है, यह दोंनो लेखन भी डॉ. बाबासाहब आंबेडकर कि विचारधाराओं से प्रभावित दिखाई देते है। दलित साहित्य की विकासधारा को यदि देखा जाए तो पत्रपत्रिकाओं का

योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है। इस दृष्टि से महाराष्ट्र से प्रकाशित 'अस्मिता' व 'अस्मिता-दर्शन', प्रबुद्ध भारत, युद्धरत आम आदमी, अपेक्षा इत्यादी पत्र पत्रिकाएँ भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है। दलित साहित्य के केंद्र में मनुष्य है, मानवतावादी दृष्टिकोण से यह साहित्य लिखा गया है। यह साहित्य मनुष्य पर अत्याचारों एवं उसके शोषण का विरोध करता है। यह साहित्य समाज को मनुष्य के हित में बदलने का पक्षधर साहित्य हैं। एक नए मानविय समाज के निर्माण का पक्षधर हैं। जिसमें रंग, रूप, जाति, व्यवसाय, लिंग, सामाजिक सत्ता, अधिकार पर मनुष्यों के बीच भेदभाव न हो, यह साहित्य शोषण पर आधारित व्यवस्था का विरोधी है। भारतीय दलित साहित्य सर्वाधिक डॉ. आंबेडकर के विचारों एवं गौतम बुद्ध, ज्योतिबा फुले के विचारो से अधिक प्रभावित है। तथा इस साहित्य पर अश्वेत साहित्य का भी प्रभाव दिखाई देता है, जैसे अमेरिका में नीग्रो लोंगो द्वारा स्थापित ब्लॅक पैंथर से ही भारत में दलित पैंथर यह कार्य करता हैं। समाज के भीतर जहाँ अन्याय और अत्याचार हो रहा है, वहॉ दलित पैंथर अपना कार्य कर रहा है। आज संगोष्ठी में चर्चाओं में विद्वानों, आलोचको एंव रचनाकारों द्वारा कुछ सवाल दलित साहित्य को लेकर उठाए गए हैं - दलित साहित्य की अवधारणा क्या है? उसकी प्रांसगिकता क्या है? दलित साहित्य का सौंदयशास्त्र क्या है? दलित साहित्यकार किसे कहे? इन तमाम सवालों को केंद्र में रखकर ही दलित साहित्य की विवेचना सम्भव हैं। सामन्ती अवशेंषों ने कुछ ऐसे मुखौटे धारण किए है, जिनके भीतरी संस्कारो और सोच को पहचान पाना मुश्किल होता हैं। साहित्य में मानवीय संवेदनाओं से अलग एक काल्पनिक संसार की रचना होती हैं। उनकी सोच अलग हैं। अपने स्वार्थ से प्रेरित साहित्य की रचना हो रही है। वे लोग दलित साहित्य की जीवन्तता और सामाजिक बदलाव की मुलभूत चेतना को अनदेखा कर उस पर जातिय संकीर्णता एंव अपरिपक्वता का आरोप लगा रहे हैं। दलित जीसका सब कुछ समाप्त हुआ है, वह सर्व हारा है,

प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा वर्ग के अन्तर्गत आ सकता है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए हम बाध्य नहीं हो सकते। इसका कारण यह है कि सर्वहारा वर्ग केवल मजदुरों तक ही सीमित है। ''भारत में अंग्रेजी शासन काल में आधुनिक उद्योग धंधे यातायात के आधुनिक साधनों और बागानों की स्थापना हुई, जिसके कारण आधुनिक मजदूर वर्ग का जन्म हुआ। जैसे बागानों, आधुनिक

कारखानो, खनिज, उद्योगों, आवागमन के साधनों आदि में वृद्धि हुई। भारतीय सर्वहारा वर्ग मुख्यतः उन किसानो और हस्त शिल्पकारों से निर्मित हुआ। वे दरिद्र हो गए थे और अब मजदुरी कर कमाने लगे थे।'' इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'सर्वहारा' शब्द की सीमा में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आ जाता है। वैश्वीकरण के दौर में सर्वहारा वर्ग का शोषण सामाजिक रूप से कम होकर आर्थिक रूप से बढ गया है। अमीर-अमीर होते जा रहे है और गरीब-गरीब बनते जा रहे है। एक और उच्च वर्ग या पूँजीपति वर्ग रोटियों के साथ खेल रहा है तो दुसरी ओर खाने के लिए मोहताज सर्वहारा वर्ग दिखाई देता है। संविधान ने उन्हें भले ही मूलभूत अधिकार दिये है अपनी जरूरतों को पुरा करने के लिए। किन्तु आज भी यह सर्वहारा वर्ग के लोग अपनी रोटी, कपडा, मकान की मुलभुत आवश्यकताओं को पुरा करने के लिए असमर्थ है। इसका मूल कारण पुँजीवादी वर्ग द्वारा शोषण हैं। मार्क्स एवं एंगेल्स के दासमूलक समाज से लेकर पूँजीवादी व्यवस्था में जितना शोषण सर्वहारा का हुआ है उतना शोषण शायद अन्य शोषण करनेवाली व्यवस्था में नही हुआ। इसलिए मार्क्स और एंगेल्स ने पूँजीवादी व्यवस्था को केंद्रबिंदू मानकर अपने समग्र विचार एंव आन्दोलन को सर्वहारा के मुक्ति का माध्यम बनाया। मार्क्स एंव एंगेल्स ने आगे लिखा है जिन हथियारों से पूँजिपति वर्ग ने सामन्तवाद का अन्त किया था वे ही हथियार आज उसके खिलाफ तन गये हैं। लेकिन पूँजीवादी वर्ग ने केवल ऐसे हाथियारों को ही नही गढा है, जो उसका अन्त कर देंगे। बल्कि उसने ऐसे आदमियों भी पैदा कर दिया है जो इन हाथियारों को इस्तेमाल करेगे। वे है आज के मजदूर वर्ग, सर्वहारा वर्ग के लोग सर्वहारा वर्ग के हाथों पूँजीपति का पराजय अवश्यभावी है। क्योंकि आज पूँजिपति वर्ग अपनी ही रची हुई सृष्टि में इस तरह उलझा गया है कि जिससे त्राण पाने के लिए जितना ही बचने का प्रयत्न करता है उतना ही और फँसता जाता है। उसकी सबसे बडी विवशता इस बात में है कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उसे एक साथ दो शत्रुओं से युद्ध करना पडता है। एक पूँजीपति तथा दुसरा अपने संघटन इस बीच मजदुरी पाने के लिए वह विवश होता हुआ दिखाई देता है। इस बढते हुए शोषण के विरुद्ध लडने के लिए और विश्व के सभी सर्वहारा वर्ग को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए मार्क्स ऐलान करता है कि – "Proletarians have nothing to lose but their chains, they have a world to win, proletarian of all lands Unite."[५०] सर्वहारा के पास दासता की शृखलाओं को

छोडकर अब और कुछ खोने के लिए बाकी नहीं है परन्तु विजय के लिए उसके सम्मुख एक विशाल विश्व है। सर्वहारा वर्ग और दलित वर्ग के भीतर दलित वर्ग की व्याप्ति अधिक दिखाई देती है, वह यदि समाज में संपन्न भी हो गया तो उच्चवर्ग के सामने वह निम्न नीची जाति का है, वह कितना भी बडा क्यों न हो जाति उसके साथ ही होती है। २४ जनवरी १९७८ को भारत के तत्कालीन रक्षामंत्री बाबू जगजीवनराम ने काशी में डॉ. सम्पूर्णानंद की मूर्ति का अनावरण किया। इस पर काशी के पंडितों ने ट्रक में गंगाजल लाकर मूर्ति को पवित्र किया क्योंकि ''एक अछुत ने उसे छू लिया था। उस समय संविधान की धारा ७७ धरी की धरी रह गई और नागरिक अधिकार संरक्षण कानून १९५५ की धारा टुकूर-टुकूर ताकती रह गई।'' खूद रक्षा मंत्री होते हुए भी इस घटना पर बाबू जगजीवनराम कितने आरक्षित साबित हुए। इसलिए दलित के साथ उसकी जाति चिपककर आती है, मृत्य के बाद ही वह चली जाती है, लेकिन यदि कोई सर्वहारा मेहनत करके या उसे कही खजाना यदि अचानक मिल जाए तो वह पूँजीपति कहलाएगा समाज में उसका मान सम्मान बढेगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'सर्वहारा' शब्द की सीमा में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आ जाता है। अतः स्पष्ट हो गया कि दलित और सर्वहारा में प्यापि की दृष्टि से बहुत अन्तर है लेकिन इस बात की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है कि संम्पूर्ण दलित वर्ग आर्थिक विषमता एवं शोषण का शिकार रहा है।

दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र

हिंदी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र संस्कृत और पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र पर आधारीत है। इसलिए उसकी कसौटियाँ दलित साहित्य के मूल्यांकन में अक्षम्य साबीत होती हैं। संस्कृत साहित्य का मूल आधार सामंतवादी दृष्टिकोण है। उसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य की सौंदर्य दृष्टि भी पूंजीवादी एंव सामंतवादी हैं। उसी का प्रभाव भारतीय काव्य तथा सौंदर्यशास्त्र पर दिखाई देता है। इसी को लेकर डॉ. मस्तराम टिप्पणी करते है, ''पश्चिमी साहित्यशास्त्र के संपर्क में आने के बाद भी हमने अपनी धारणाओं पर पुनर्विचार नहीं किया, बल्कि उसको जैसे-तैसे अपने साहित्य के साथ संगति बैठाने की कोशिश की। आ. रामचंद्र शुल्क ने यह काम इतनी चतुराई से किया, कि पश्चिमी शास्त्र की अवधारणाओं को भारतीय साहित्यशास्त्र की मूल धारणाएँ बना दिया। रस की सिद्धावस्था, साधनावस्था, साधारणीकरण और कविता का भावयोग आदि शब्द इसे इंगित करते है। संस्कृत साहित्य आदि साहित्य

कहलाता है, उसका प्रभाव आनेवाले साहित्य पर होता दिखाई देता है। हिंदी रचनाकारों का संस्कृत साहित्य के प्रति मोह संस्कारगत था। संस्कृत को भाषा की जननी कहा जाता है। इसलिए संस्कृत सौंदर्यशास्त्र का प्रभाव हिंदी रचनाकारों पर होता दिखाई देता है। लेकिन रचनाओं में सामाजिक, धार्मिक स्थिति भिन्न थी, परिवेश भिन्न था। जहाँ सिद्ध कवियों नाथों का जीवन और उनकी अभिव्यक्ति उन्हें संस्कृत साहित्य से अलग करती है, उनके जीवन मूल्य यह भिन्न थे, फिर भी हिंदी साहित्य के मूल्यांकन के लिए संस्कृत साहित्य को ही आधार बनाया गया। लेकिन यह ध्यान देना आवश्यक है कि प्रत्येक काल के अनुरूप सौंदर्य की परिभाषा यह भिन्न होती हुई दिखाई देती है। संस्कृत भाषा का काल भिन्न था, उसी के अनुसार यह सौंदर्यशास्त्र दिखाई देता है। उस वातावरण का प्रभाव उस भाषा तथा साहित्य पर दिखाई देता है। शिवकुमार मिश्र कहते है ''जिस काव्यशास्त्र या साहित्यशास्त्र द्वारा निर्धारित प्रतिमानों से प्राणरस लेकर सदियों सहस्राब्दियों से भारतीय रचनाशीलता विकसित और पल्लवित होती रही है, महान रचनाकारों की विश्वविख्यात रचनाएँ जिसकी कीर्तिपताका फहरा रही है, वह काव्यशास्त्र या साहित्यशास्त्र भी अंततः उसी कुलीन मानसिकता की देन है, जो हमारे सामाजिक विधान की भी स्रष्टा हैं । इस काव्यशास्त्र में अभियोजनोचित रूचियों, रूझानों, संस्कारो और सौंदर्यबोध का ही तो वर्चस्व है। उच्च कुलोत्पन्न धीरोदात्त व्यक्तित्व ही इनमें नामकत्व का अधिकारी कहा गया है। सौंदर्य के प्रतिमानों और भावों का गांभीर्य तथा उज्ज्वलता भी यहाँ अभियोजनोचित रूचियों के आधार पर तय की गई है और देखी गई है।'' संस्कृत साहित्य का जब सृजन हुआ समाज व्यवस्था वर्ण-व्यवस्था से बंधी हुई थी, समाज व्यवस्था संकीर्ण थी, विचारधारा और वातावरण भी संकुचित था, उसका परिणाम यह हुआ कि कबीर को कवि नहीं संत मानते है। ऐसा कहना संकीर्ण सोच का परिणाम दिखाई देता है एक कवि का दूसरे कवि के पंथ के लिए जो नजरिया है वह पूर्ण रूप से सांप्रदायिक दृष्टिकोण है। जो निम्नवर्ग के लिए 'नीच' शब्द का प्रयोग कर रहा है जब कि कबीर हिंदी साहित्य के जागरूक क्रांतिकारी कवि थे। जिन्होंने धार्मिक आंडबरों को तहस-नहस कर जीवन को सार्थकता की ओर ले जाने की कोशिश करते हैं। प्राचीन सौंदर्यशास्त्र को लेकर आज हम उसके साथ न्याय और शिल्प की बाते करेंगे तो वह उचित नही होगा। दलित साहित्य को समझने के लिए प्राचीन अंलकार, बिम्ब, प्रतिक से काम नही

होगा। दलित साहित्य के मूल्यांकन से पहले पूर्व परंपरावादी समीक्षकों को भारतीय समाज व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, भेदभावों, सामंती सोच, भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करना होगा। भारतीय राजनीति को समझकर साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन करना आवश्यक है, तभी दलित साहित्य का सही और यथार्थ मूल्यांकन हो पायेगा। पारंपारिक धारणाओं से हम दलित साहित्य को नही देख सकते है। डॉ. एन. सिंह की धारणा है कि दलित साहित्य का शब्द सौंदर्य प्रहार में है, सम्मोहन में नहीं। वह समाज और साहित्य में शताब्दियों से चली आ रही सडी-गली परंपराओं पर बेदर्दी से चोट करता है। वह शोषण और अत्याचार के बीच हताश जीवन जीने वाले दलित को लडना सिखाता है। वह सिर पर पत्थर ढोने वाली मजदूर महिला को उसके अधिकारों के विषय में बताता हैं। उसे धर्म की भूल-भूलैया से निकालकर शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाता है। उसके लिए जिस शाब्दिक प्रहार क्षमता की आवश्यकता है वह उसमें है और यही दलित साहित्य का शिल्प सौंदर्य है।'' राजेंद्र यादव मानणा हैं साहित्य जीन तत्वों से अमर, स्थायी या सार्वभौमिक होता है उनमें मुझे तीन सबसे प्रमुख लगते हैं संघर्ष, यातना और विजन। यहाँ राजेंद्र यादव का मानणा है, कि जो भी साहित्य निर्माण होता है, वह संघर्ष और यातना को लेकर लिखा जाता है, तब उसकी ओर देखने का दृष्टिकोण भी अलग होना चाहिए। प्राचीन परंपरागत सौंदर्यशास्त्र से हम मूल्यांकन नही कर सकते है, दलित साहित्य में यह तीन तत्व दिखाई देते है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर दर्शन एवं विचार ने दलित साहित्य में संघर्षशीलता को तीव्रता दी है। दलित साहित्य में वेदना करूणा का भाव दिखाई देता है। शब्द की रमणीयता समीक्षकों के लिए बौद्धिक विकास का काम करती है। जैसे जैसे जीवन बदलता है अनुभव बदलते है, यथार्थ बदलता है देखने का नजरीया भी बदलना आवश्यक हो जाता है। इसलिए दलित साहित्य को देखने परखने के लिए अलग से सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता है। साहित्य का प्रयोजन यह आनंद है, आनंद के लिए रसोत्पत्ति। यह आनंद क्षणिक होता है, जिसे दलित साहित्य स्विकार नहीं करता। एक दलित जिस उत्पीडन को भोगकर दुःख वेदना से साक्षात्कार करता है, वह आनंददायक कैसे हो सकता है? दलित साहित्य आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करता है, इसीलिए उसकी क्षेष्ठता शब्दजीवी नहीं है। न शाब्दिक चमत्कारों तक ही सीमित हैं। परंपरावादी सौंदर्यशास्त्र की परिभाषा का दलित साहित्य विरोध करता है। परंपरावादी दृष्टिकोण के अंतर्गत

सौंदर्य एक ऐसी विषयीगत वस्तू समझी जाती है, जिसकी जडे वास्तविकता के सामान्य विषयगत गुणों में नहीं है। मैनेजर पांडेय का कथन है ''कोई भी सौंदर्यशास्त्र एक दिन में नही बनता। प्रतिरोध और विकल्प का सौदर्यशास्त्र तो और भी नहीं। वैसे तो हिंदी में कोई विकसित सौदर्यशास्त्र नहीं है लेकिन जो है उसके पिछे एक ओर संस्कृत के काव्यशास्त्र की लंबी परंपरा है तो दुसरी ओर पश्चिम के सौंदर्यशास्त्र को देखकर उसके बाह्य अंगो, उसकी चाल, उसकी हिनहिनाहट पर ही लिखेंगे। लेकिन दिनभर का थका हारा जब वह अस्तबल में भूखा प्यासा खुँटे से बँधा होगा, तब अपने मालिक के प्रति उसके मन में क्या भाव उठ रहे होंगे, उसकी अन्तः पीडा क्या होगी, इसे आप कैसे समझ पाएँगे? यह सिर्फ घोडा ही महसुस करता है, और कोई नही। सिर्फ यहॉ घोडे का दर्द घोडा ही जाने। आज समाज के भितर सामाजिक अन्तर्विरोधों से उपजी विसंगतियोंने दलितों में गहन निराशा को निर्माण किया है। वह स्वंयः इससे गुजरा है, भीड में होने पर भी उसके मन में अकेलेपन का भाव निर्माण होता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, विशाल मानव जाति की आत्मा का स्पंदन ध्वनित करनेवाला साहित्य समाज की चेतना मे ही साँस लेता है। समाज के भीतर का दुःख, दर्द, हर्ष, विषाद आदि का चित्रण करते हुए साहित्य जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसलिए साहित्य का समाज के साथ गहरा संबध है। कला अथवा साहित्य का ध्येय जन जीवन का चित्रण करना, शोषन अथवा दासता के विरुद्ध छेडे गये जनता के संग्राम में उसका अस्त्र बनना है। साहित्य में यह सब दुःख, दर्द, पिडा एक अस्त्र बनकर उभरती है। दलित साहित्यकारोने समता, न्याय, लोकतंत्र, बन्धुता, अस्पृश्यता, दलितो की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और शैक्षणिक समस्याओं में सुधार लाकर सामाजिक जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के प्रति साहित्यकारों ने अपनी सृजना को महत्व दिया है। दलित साहित्यकार दलितों के मन में विद्रोह की शक्ति भरते आए हैं। इतना ही नही बल्कि सदियों से मन में बसे हीन भाव, अंधानुकरण आदि समस्याओं को समूल उखाड फेकने की शक्ति दलितों में जगायी हैं। ''दलित साहित्य सही मायने में वह साहित्य है जो दलितों ने अपने ज्ञान अपने तजुर्बे अपनी कठिनाइयों और पीडा के आधारपर लिखा।'' दलितों को जागृति, उन्नति, प्रगति पथ पर भेजना यही दलित साहित्य की अवधारणा है।

हरिजन शब्द का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

महात्मा गांधीजीने अस्पृश्यों के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग किया इससे पूर्व

भी हरिजन शब्द का प्रयोग होता था। हरिजन का अर्थ है 'भगवान का जन' यहाँ हम ऐतिहासिक दृष्टि से उसका अर्थ देखते है १३वी शताब्दी में गुजराती कवि नरसी मेहता के यहाँ सर्वप्रथम 'हरिजन' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'हरिजन' का प्रयोग सबसे पहले देवदासियों की संतान की पहचान के रूप में प्रचलन में आया है। देवदासी प्रथा के अन्तर्गत देवदासियों को ईश्वर की सेवा तथा मंदिरों में सेवा पाणिग्रहण संस्कार कराया जाता था। मंदिर में देवदासी रहती थी, लेकिन समाज तथा उच्चवर्ग की वासना की शिकार हो जानेपर गर्भवती बन जाती थी, उनकी संतान को किस का नाम दे, बच्चे के पिता अपना नाम छिपाते थे। बुरे कर्म को स्वीकारने में दुर्भाग्य समझते थे। ऐसे बच्चों की सामाजिक स्वीकृति के लिए उन्हें 'हरिजन'से विभुषित किया गया और उसका अर्थ बताया गया – 'ईश्वर की संतान'। अतः ऐसे बच्चे जो हरि के मंदिर में पैदा हुए मानकर उनको 'हरिजन' नाम दिया गया। कवि तुलसीदासजीने भी रामचरित मानस में 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया है, किंन्तु अर्थ और उपयोग यह अलग अलग है, हरिजन और अस्पृश्य दोंनो शब्द भिन्न रूप में दिखाई देते है। तुलसीदासने ब्राह्मण के लिए भी हरिजन शब्द का प्रयोग यह किया है। अलग अलग काल और वातावरण के भीतर हरिजन शब्द का प्रयोग होता दिखाई देता है।

डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने गांधीजी द्वारा दिया गया यह मोहक नाम हरिजन का प्रखर विरोध किया। उन्होंने ४ नवम्बर १९३१ को आवेदनपत्र में अस्पृश्यों के लिए दलित वर्ग (Depressed Class) शब्द का प्रयोग किया। दलित वर्ग जो दमन और अपमान से उपजे आक्रोश की अभिव्यक्ति करनेवाला शब्द 'दलित' अपनी व्यापक अवधारणा के साथ प्रस्तुत होने लगा हैं। जो वेदना का भाव दलित में है, वह हरिजन के भीतर नही है। गांधीजी ने यह सोचा अस्पृश्यो की समस्या को सुलझानेवाला कोई संगठन नही है, वह होना चाहिए। २८ सितम्बर १९३२ को आखिल भारतीय अस्पृश्यता निवारण लीग की स्थापना की गई। पर गांधीजी को यह नाम अच्छा नही लगा। नया नाम दिया 'अस्पृश्य समाज सेवक, यह भी नाम अच्छा नही लगा तब उन्होंने 'हरिजन सेवक संघ' यह नाम दिया गांधीजी के अनुसार हरि का अर्थ है ईश्वर, न कि विष्णु और 'हरिजन' का सीधा-सा अर्थ है 'ईश्वर की संतान' गांधीजी ने अस्पृश्यों को हरिजन नाम दिया तब चारों ओर से विरोध हुआ तब गांधीजी ने स्पष्ट किया कि किसी एक दलित ने मुझे विनंती की थी

कि मुझे ऐसे नाम से पहचानना अच्छा नहीं है जिसे निंदावाचक माना जाये। दलित या पीडित गुलामी की याद दिला रहे हैं। तब मैंने कहा मेरे पास ऐसा कोई शब्द नहीं हैं आप ही बताइये। उसने हरिजन शब्द की सिफारिश की। अंत्यज हरि के प्रिय है। दलित को, दलित वर्गो को जब 'हरिजन' कहा जाय तब यही अर्थ होता है।

दलित चेतना के प्रेरणा स्त्रोत

दलित समाज के भीतर प्रेरणा जगाने का प्रयास बरसो से हो रहा है, दलित जनता के भीतर एक जागृति चेतना निर्माण करने के लिए बुद्ध, चार्वाक, कबीर, रविदास, जोतिबा फुले, अच्छुतानंद, पेरियार, रामास्वामी, गाँधी और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की एक समृद्ध परंपरा रही है, जिन्होंने पिछडे दलित समाज को गहराई तक प्रभावित किया है। उन्होंने किसी निश्चित रूप में तो नही बल्कि साहित्य के अलग-अलग माध्यमोंद्वारा अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है। इन विचारों की अभिव्यक्ति के साथ साथ उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन की झलक कही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दी है। सिद्धार्थ राजकुमार से गौतम बुद्ध बने, इसका शास्त्रीय प्रमाण हमे बुद्ध के जीवन चरित्र में उपलब्ध नहीं है, किन्तू भवभूति रचित 'बुद्ध चरितम' द्वारा हमें बुद्ध के जीवन के बारे में पता चलता है। साथ ही यह भी सत्य है कि करोंडो शोषित-पिडित लोंगो को हिन्दुत्व के शिंकजे से मुक्त करानेवाले इस मसीहा का चरित्र उनके लिए प्रेरणा बना हो यह स्वाभाविक ही है। चार्वाक के दर्शनों को हिन्दुवादी शंकराचार्यो ने जान बुझकर दर-किनार कर दिया वरना चार्वाक का दर्शन जीवन के विधायक अभिगम को लेकर चलाया गया था। कबीर जैसे महापुरूष के दोहे का अध्ययन करने पर कबीर का जीवन विषयक दृष्टिकोण और समाज के लिए प्रेरणा मिलती है। रविदास जाति से चमार थे, कदम-कदम पर सहे जातिगत अपमान उनके दोंहो में देखने को मिलते है जो उनके व्यक्तित्व की छवि को मुखरित करते है। म. जोतिबा फुले जिन्हे डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने अपना गुरू माना है उनके समग्र साहित्य को देखने पर एक बार उनके क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का पता चले बगैर नहीं रह सकता। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जिनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए हो तो जन सामान्य के लिए फुले जी का प्रेरक बनना बिलकुल स्वाभाविक ही है। जोतिबा फुले के बाद और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के पहले एक युग प्रवर्तक चरित्र हमारे सामने आते है जिन्होंने न सिर्फ भारतीय राजनीति बल्कि धार्मिक सामाजिक और आर्थिक नीतियों को प्रभावित किया। वे है, महात्मा

गांधीजी उनका कार्य तथा आचरण दलित समाज के लिए प्रेरणादायी है। वैसे म. गांधी का संपूर्ण जीवन ही प्रेरणादायी हैं। साथ ही महाराजा सयाजीराव गायकवाड जी ने भी अपने सुधारवादी कार्य के कारण भारतीय समाज के भीतर जो पिछडा वर्ग है, उसके कल्याण के लिए प्रेरणादायी कार्य किया है। यह ऐसे युगपुरूष है जिनका नाम लेने के बाद समाज के भीतर एक स्फूर्ती निर्माण होती है। म. फुले का संपूर्ण कार्य प्रेरणादायी है, १८५२ में दलित छात्रों के लिए स्कूल खोला। उन्होंने 'त्रिज्या रत्न' नाटक की रचना की है, इसे पढने के बाद समाज के भीतर एक नवपरिवर्तन दिखाई देता है। यह प्रेरणा म. फुले से हमे मिलती है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर दलितो के मसिहा है। डॉ. अंबेडकर साहित्य सृजन के संदर्भ में कहते है – ''पुस्तके लिखते हुए, समय कैसे बीत जाता है यह मेरी समझ में नही आता। लेखन करते समय मेरी पुरी शक्ति एकत्रित होती है। मैं भोजन की परवाह नहीं करता । मै कभी कभी तो रातभर पढता–लिखता, बैठता रहता हूँ। मैं उस समय कभी नही उबता, ना ही मुझे उब महसूस होती है। काम समाप्त होते ही मैं बहुत उत्साही और संतुष्ट हो जाता हूँ। मुझे पुत्र जन्म पर जितना आनंद होता था उतना मुझे मेरी पुस्तक के प्रसिद्ध होने पर होता है।'' इस तरह दलित वर्ग इन्हें देखता है, और जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है, बुद्ध के क्रांतिकारी तत्त्वज्ञान का पुरा सार दलित साहित्य में है, सत्य की रक्षा तथा अन्याय, अत्याचार को कभी भी नही सहना है, भले उसमे हमे हारना भी पडे तो मंजूर है, लेकिन किसी का गुलाम नही बनना है। बुद्ध ने वैशाली के सेनापति सिंह के यह पुछने पर क्या भगवान तथा हम अपने घर, स्त्री, बच्चे और अपनी जायजाद के रक्षा हेतू युद्ध न करे? क्या हमें अत्याचारियों के आत्मविचारों को चुपचाप सहकर उसकी अधीनता दीनतापुर्वक मान लेनी चाहिए? क्या सत्य और न्याय के लिए युद्ध करना भी मना है? तब बुद्ध ने जवाब दिया था ''जो दंड का पात्र है उसे दंड और जो पुरस्कार का पात्र है उसे पुरस्कार आवश्यक मिलना चाहिए। शैतानी ताकतों के सामने कभी आत्मसमर्पण नही करना चाहिए। संग्राम होना चाहिए पर किसी निजी स्वार्थ के लिए नहीं। जो सत्य और न्याय के लिए युद्ध करता है उसकी पराजय भी विजय है।'' म. गांधीजी ने 'अस्पृशता निवारण' अपने हाथ में लिया। महाराजा सयाजीराव गायकवाडजी ने अछूतो के लिए शिक्षा के दालन खोले। यह सब करनेवाले महापुरुषों को देखने बाद पढने के बाद लेखन कार्य शुरू हो जाता है। सही मायने में यही प्रेरणास्त्रोत है, जिनके कारण आज दलित

साहित्य हमारे सामने आ गया है।

महात्मा ज्योतिबा फुले

महात्मा ज्योतिबा फुले निडर व्यक्ति थे ऐसे ही विचार दलितो मे भरना उनका परम कर्तव्य बन गया। इसलिए वे पददलित समाज के भीतर एक जनजागृती करते है। अज्ञान ही मनुष्य का सबसे बडा शत्रु है, इसी वजह से मनुष्य अपनी प्रगति नही कर सकता। शिक्षा का महत्व समाज के भीतर उन्होंने समझाया वे कहते है शिक्षा से ही तुम्हारा उद्धार और सुधार होगा वर्ना दुर्गति प्राप्त होगी। कहते हुए शिक्षण का महत्व क्या है इसका परिचय इन पंक्तियों द्वारा कराते हैं... अशिक्षा से बुद्धी गयी, बुद्धि के बगैर नीति गयी, नीति के बगैर प्रगति, गयी और प्रगति के सामाजिक परिवर्तन चाहते हैं। दलित साहित्य की प्रांरभिक अवस्था में कम से कम दलित लेखको को निःसंदेह ऐसा लगता था कि साहित्य न केवल मानवीय अनुभवों का निवेदन अथवा प्रकटीकरण ही करता है बल्कि समाज को क्रांतिप्रवण करने का वह एक समर्थ माध्यम भी हैं। अतः दलित साहित्य अपनी विद्रोह की भूमिका अपरिहार्य और आवश्यक मानता है।''

इस प्रकार हम देखते है कि दलित साहित्य की भाषा में नकार की एक जबरदस्त गुंज है और यह साहित्य उन सब धार्मिक-सामाजिक-सांस्कृतिक रूढियों और संस्थाओं का तीव्र निषेध करना चाहते है जिन्होंने इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को बनाया, विकसित किया, दृढ बनाया और इस षडयंत्र को जारी रखा। समाज के सामने उच्च आदर्श तथा जीवन की एक नई दिशा को लेकर दलित साहित्य निर्माण होता है। दलित साहित्य 'दलित' और 'हरिजन' के बीच के अंतर को स्पष्ट रूप से समझाता है। उसके अनुसार जहाँ हरिजन एक गाल पर तमाचा लगने पर अपना दुसरा गाल भी आगे धर देगा वही 'दलित' अपनी आंबेडकरवादी चेतना के कारण प्रतिक्रियावादी बनकर विरोध करेगा। इस प्रेरणा तथा प्रभाव से प्रेरित होकर दलित साहित्य ने अपनी जडे हिंदी साहित्य के भीतर फैलाई है। जितने भी दलित साहित्यकार है, उन्होंने अपनी अपनी त्रासदी का चित्रण करके समाज के सामने आदर्श रखने का प्रयास किया है। दुःख पिडा को अभिव्यक्त किया है। दलित साहित्य का नवीन तथा खरा रूप यह सवर्ण लेखको की समझ के बाहर होने के कारण इस विषय पर बेबनाव प्रश्न कर रहे है। अथवा उनका स्वार्थ-भाव ही ऐसा कहने के लिए बाध्य करता है। उदा. के लिए कुछ साहित्यकारो ने गैर दलित होकर

भी दलितो के प्रति संवेदनशील साहित्य लिखा है। ऐसे साहित्यकारों की इज्जत करनी चाहिए। लेकिन कुछ अदलित साहित्यकार अपना उल्लू सीधा करने के लिए दलित साहित्य पर पुरस्कार प्राप्त करने के लिए साहित्य की रचना करते है, तो ऐसे कार्य मान्य के विरोध है। दलित साहित्य का उद्देश यह दलितो की समस्याओं को सुलझाने के लिए लिखा गया हो और दलितों के सुख-दुख का विस्तार से वर्णन मिलता हो। उनके वास्तविक जीवन की त्रासदी का चित्रण करना यह दलित साहित्य का मुख्य उद्देश हैं।

मार्क्सवाद के अध्येता यशपाल ने मार्क्स प्रणित सर्वहारा वर्ग का विवेचन करत

चतुर्थ अध्याय

समकालिन हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन

भूमिका –

साहित्य का केंद्र समाज होता है, और समाज का केंद्र मानव होता हैं उपन्यास साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है, जिसमें मानव और उसके जीवन के विविध पक्षों का चित्रण होता है, समाज में समय के साथ परिवर्तन होते है, युगीन परिस्थितियाँ ही प्रमुख रूप से साहित्य निर्माण का कारण बनती है, समाज के भीतर परिवर्तन, मनुष्य के जीवन तथा रहन सहन खानपान सामाजिक संबधों, आचार, विचार, जीवन शैली आदि पर प्रघात करते है, उसी का चित्रण प्रत्येक काल के साहित्य में दिखाई देता हैं। साहित्य समाज की चेतना में साँस लेता हैं। जनमानस के सुख दुःख आदि का चित्रण करते हुए जीवन की व्याख्या करता हैं। इसलिए हम कह सकते है कि साहित्य पूर्णतः मानव केन्द्रित हैं।

उपन्यास साहित्य में समाज का चित्रण होता हैं, समाज के भीतर जो भी बदलाव आते हैं, उन्ही का चित्रण उपन्यास में किया जाता हैं, साहित्य में मूल्य संक्रमण, सामाजिक परिवर्तन, बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था नैतिक मूल्य समाज के भितर रहनेवाले लोंगो की यातना, घूटन आदि का चित्रण होता हैं। इन सभी के भीतर मध्यवर्ग को केंद्र में रखकर उनके जीवन की समस्याओं को भी चित्रित किया जाता हैं, उपन्यासो में गाँव, नगर, महानगर, झूग्गी झोपडी आदि का जन जीवन का चित्रण यह होता हैं। उनके साथ साथ समाज के उपेक्षित, पीडित, अपमानित दलित जीवन को भी चित्रित करने का कार्य इन उपन्यासकारों ने किया हैं। साथ ही सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक सांस्कृतिक स्तर पर भी जो परिवर्तन होता हैं, उनका चित्रण भी किया जाता हैं। इस दृष्टि से हिंदी उपन्यास साहित्य आज भी महत्वपूर्ण रहा है। साहित्य और समाज का संबध यह एक सिक्के के यह दो पहलू हैं, जिस प्रकार समाज उन्नत होगा तो साहित्य भी उसी का प्रकार विकसित होगा साहित्य यह समाज का दर्पण होता हैं, समाज का संपूर्ण दर्शन यह हमें साहित्य के माध्यम से दिखाई देता हैं। ''साहित्य वस्तुतः जीवन और समाज से भाव सामग्री लेकर अपने शरीर या स्वरूप का निर्माण करता हैं। अच्छा साहित्य और अच्छा समाज जीवन को समृद्ध और उन्नत बनाता हैं।''

उपन्यास विधा का प्रारम्भ पहले यूरोप में हुआ हैं और इस मान्यता को स्वीकार भी किया जाता हैं। यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप मध्यमवर्ग का विकास हुआ और इसी वर्ग के बुद्धिजीवियों द्वारा उपन्यास लेखन की नींव रखी गयी। भारतीय समाज में इसका प्रारंभ उन्नीसवी सदी के अंतिम दौर में हुआ। जो आगे चलकर साहित्य की केंद्रीय विधा बन गई। उपन्यास लेखन के विकास में बहुत सारे पडाव आये उसीके अनुरूप आज तक पर्याय मात्रा में इस विधा ने सबको प्रभावित किया हैं।

उपन्यास लेखन का प्रांरभ हुआ हैं, तब से आज तक उसके स्वरूप एवं विकास में बदलाव यह समय के साथ आता रहा हैं। वह किसी एक कडी में बंधा नही हैं। उपन्यास के केंद्र में कभी गाँव होते हैं, कभी शहर होते हैं, कभी गांव का वातावरण कभी शहर का वातावरण दोंनो का समान्तर योग होता है तो कभी पहाडी जीवन की त्रासदी, आदिवासी, जीवन की त्रासदी तो कभी दलित जीवन की व्यथा और दशा को उपन्यास की पृष्ठभूमी बनायी जाती है। तात्पर्य यह है कि किसी पृष्ठभूमि के आधार पर वहाँ के मानव समुदाय को उनके समयानुसार बदलते सामाजिक आर्थिक परिपेक्ष्य में प्रस्तुत किया जाता हैं। मानव विकास के विभिन्न पडावों में या चरणों में जिस तरह से मानव जीवन में बदलाव सामाजिक आर्थिक संदर्भ बदलते है उसी के अनुरूप सामाजिक संरचना बदलती रही हैं। साहित्य मानव जीवन कों केंद्र में रखकर ही लिखा जाता हैं। मानव जीवन और समाज जीवन का अभिन्न संबध रहा हैं उपन्यास एक ऐसी विधा हैं जिसमें जीवन का व्यापक फलक चित्रित होता हैं। आधुनिक काल में मानवी जीवन का महाकाव्य उपन्यास को माना गया हैं। उपन्यास विचारो भावनाओं संवेदनाओं का वाहक ही नहीं बल्कि चरित्रों का आख्यान भी है।

साहित्यकार समाज जीवन का एक अंग होता हैं। जो देखता हैं उसी का चित्रण भी करता हैं। समाज के भितर आए बदलाव सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक परिवर्तन की भूमिका को स्पष्ट करना साहित्यकार का उत्तरदायित्व होता हैं, हिंदी साहित्यकारों ने उसे निभाया हैं, दलित शोषित, किसान, नारी, विधवा, वेश्या, मजदूर आदि सभी वर्गो का यथार्थ चित्रण साहित्य में करने की व्यथा को वाणी देने का प्रयास किया है।

हिंदी उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद की भावना उपन्यास सम्राट मुंशी

प्रेमचंदजीकी देन हैं, मनोरंजन के धरातल से उपन्यास को निकाल कर जनजीवन का चित्रण करने का कार्य उन्होंने किया है, उपन्यासों में सामाजिक आदर्शवाद को अपनाया हैं। ''प्रेमचंद पहले ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने राष्ट्रव्यापी जनचेतना और समाजवादी सुधारवादी अवधारणा को व्यापक प्रसार देने के लिए समाज के दलित और शोषित वर्ग की वास्तविक स्थिति को प्रगट किया।[२] आधुनिक युग में साहित्यकार देशभक्ति के साथ साथ साहित्य में किसान, मजदूर दलितो की दयनिय स्थिति का भी चित्रण वह करने लगा था साहित्य ही आनेवाली पिढी के लिए दिप स्तंभ का कार्य करता है, समाज को सही दिशा में ले जाने का कार्य साहित्य ही करता है। साहित्य सुसंस्कारों को लेकर चलता है, समाज के भीतर अच्छे और नेक विचारों को वह रखने का यत्न करता है, ''साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक तथा सुन्दर बनाता है। दुसरे शब्दों में उसी की बदौलत मन पर संस्कार होता हैं। यही उसका मुख्य उद्देश्य है।'' साहित्य समाज का हित तथा कल्याण की दृष्टि से ही लिखा जाता है। भारतीय समाज के भीतर अनेक आचार, विचार, धर्म, परंपरा को लेकर चलनेवाले लोग हैं, यह समाज चार वर्गो में प्राचीन व्यवस्था के अनुरूप बट गया हैं, समाज में ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र यह चार वर्ग हैं। आर्थिक आधार पर समाज का विभाजन यह होता हैं, उच्च वर्ग तथा निम्नवर्ग ऐसी समाज व्यवस्था का रूप हमें मिलता हैं, उच्चवर्ग अपना जीवन ऐश्वर्य से जीता हैं, उसके सामने जादा प्रश्न तथा समस्याएँ नही होती हैं, लेकिन समाज का एक उपेक्षित वर्ग है, जो दलित कहलाता हैं, वह अपनी मुख्य समस्याओं से परेशान हैं, इसी से मुक्ति के हेतु वह प्रार्थनास्थलो का आश्रय लेता हैं, अनेक प्रकार की रुढि परंपरा को साथ लेकर चलनेवाला दलित समाज उपेक्षीत जीवन जीता हैं, उसके प्रश्न अलग हैं समस्या अलग हैं, रहन सहन, बोली भाषा, खान पान, सब अलग हैं, वह दयनिय जीवन जीता हैं। भारतीय समाज व्यवस्था विवाह नारी स्थिति सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन समाज सुधारकों का कार्य एंव परिणाम स्वरूप परिवर्तन शोषितों का विद्रोह और संघटन शक्ति, चेतना जागृति आदि का चित्रण करते हुए आधुनिक भारतीय समाज जीवन की तस्वीर चित्रित करता हैं।

इस अध्याय में हिंदी उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन को उपन्यास विधा के विकासक्रम के साथ साथ अवलोकित किया जा रहा हैं। उपन्यासों का व्यापक कॅनवास होने के कारण सभी का समग्र विवेचन करना असंभव सा है, न यह शोध

का मुख्य विषय हैं, लेकिन संकेत को देते हुए उपन्यासों में दलित जीवन को देखना है, इस अध्याय का विवेचन करने के लिए मैंने मुख्यत स्वंतत्रता को केंद्र मे रखते हुए इसका विश्लेषण यह तीन भागों में विभाजित किया है। १) स्वंतत्रता पूर्व उपन्यास में दलित वर्ग २) स्वांतत्र्योत्तर उपन्यासों में दलित वर्ग ३) विमर्शात्मक उपन्यास लेखन में दलित वर्ग की अभिव्यक्ति। इस अध्याय का विवेचन एव विश्लेषण निम्नानुसार हैं।

स्वंतत्रता पूर्व उपन्यास साहित्य में दलित जीवन

हिंदी उपन्यासों में प्रेमचंदजी का नाम उनकी लेखनी से पहचाना जाता है, इसलिए साहित्य जगत में प्रेमचंद पूर्व तथा प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोत्तर युग माना जाता है, लेकिन हम यहाँ स्वंतत्रता को केंद्र में रखकर विश्लेषन करते है, स्वंतत्रता पूर्व हिंदी उपन्यासों का मुख्य उद्देश मनोरंजनपरक था प्राचीन प्रेमाख्यान काव्यों के गद्यमय रूप या तिलिस्म और ऐय्यारी के उपन्यास इस युग में लिखे जाते थे, तथा दुसरी ओर एक सनातनधर्मी विचारों को आधार बनाकर किशोरीलाल गोस्वामी तथा पंडित लज्जाराम मेहता इनका नाम उल्लेखनीय हैं, समाज के सामने ऐसे विचार रखे कि सामाजिक असमानता रखने में ही समाज का हित हैं। उन्होंने दलितो के प्रति किए जानेवाले अन्यायपूर्ण व्यवहार के औचित्य को दर्शाते हुए उनकी वकालत की है। इन लेखको ने पंरपरा का पालन किया जो सनातन धार्मिक विचार थे, उन्ही के पक्षधर यह थे, और उसी तरह का चित्रण उन्होने किया है, लज्जाराम मेहता अपने उपन्यास आदर्श हिन्दु (१९१४) में उन्होंने सनातनधर्मी हिंदुओं की दलितों के प्रति विवेकहीन घृणा का पोषण किया हैं। 'आदर्श हिंदु' में एक मेहतर को रेल के डिब्बे से बाहर फेका जाता हैं क्योंकि वह अछूत था। बदलाव यह नही आएगा लेकिन दुसरी ओर आर्य समाजी विचारधारा के उपन्यासकारों ने रुद्रदत्त शर्मा, श्याम किशोर अपने उपन्यासों में सनातनधर्मी पंरपरावादी आस्थाओं का खंडन किया हैं। लेकिन देखना यह है कि किन उपन्यासों में दलित जीवन का चित्रण हुआ हैं इसकी शुरुवात आरंभिक काल में दिखाई देती हैं, लेकिन हिंदी उपन्यास विकासक्रम को यदि देखे तो प्रेमचंद यहाँ केंद्र में हैं, प्रेमचंद के पूर्व उपन्यासों का हिंदी उपन्यास के विकास के दृष्टि से महत्व अवश्य हैं किंतु यह सर्वमान्य है कि वास्तविक अर्थ में उपन्यास की पंरपरा का प्रवर्तन प्रेमचंद से ही होता है।

आंरभिक काल (प्रेमचंद पूर्व युग)

आधुनिक काल का प्रवेशद्वार भारतेंन्दु युग माना जाता है, उपन्यास लेखन का आंरभ भारतेंन्दु युग से हुआ। लेकिन यह विवाद का विषय रहा है, हिंदी का प्रथम उपन्यास कौन-सा हैं। आ. रामचंद्र शुक्ल और अन्य लेखको के मत से सन १८८२ में प्रकाशित 'परीक्षागुरू' अंग्रेजी ढंग से लिखा प्रथम उपन्यास है। कुछ आलोचक सन १८७७ में लिखे 'भाग्यवती' को प्रथम उपन्यास मानते हैं, किंन्तु प्रकाशन की दृष्टि से 'परीक्षागुरू' को प्रथम उपन्यास माना जाता हैं। 'भाग्यवती' उपन्यास की रचना श्रद्धाराम फुल्लोरी ने सन १८७७ में की, किंन्तु उसका प्रकाशन उसके रचनाकाल के दस साल बाद सन १८८७ में हुआ था अब तो लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षागुरू' को ही हिंदी का प्रथम उपन्यास माना जाता हैं।

प्रेमचंद पूर्व उपन्यास का समय सन १८७७ से १९१८ ई तक माना जा सकता हैं। यह समय देश में अंग्रेजो के शासन का रहा है। इस समय उपन्यास साहित्य में सामाजिक ऐय्यारी, तिलस्मी, जासूसी, ऐतिहासिक, उपदेश-प्रधान उपन्यासों की सृजना हुई हैं।

सामाजिक उपन्यासों में श्रद्धाराम फुल्लोरी का 'भाग्यवती' लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरू' बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रम्हचारी तथा सौ अजान एक सुजान' राधाकृष्णदास का 'निस्सहाय हिन्दू' लज्जाराम मेहता का 'धूर्त रसिकलाल' 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'अधखिला फूल' और 'ठेढ हिंदी का ठाढ' ठाकूर जगमोहन का 'श्यामा स्वप्न' आदि आते हैं। इन उपन्यासों को यदि देखा जाय तो सामाजिक समस्याएँ और परिस्थितियों को ही रखा गया हैं। उपन्यास को माध्यम बनाकर सामाजिक विकृतियों बुराईयों और आडम्बर की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रमुखतः मध्यवर्गीय समाज के चरित्रों को केंद्र में रखा गया। 'परीक्षा गुरू' के ही पात्र को देखे तो उसमें ब्रजकिशोर सेठ मदनमोहन मुंशी चुन्नीलाल, मास्टर शुंभदयाल आदि मध्यवर्गीय पात्र हैं। इस संदर्भ में रामदशन मिश्र लिखते है ''लेखक ने तत्कालीन परिवेश के यथार्थ को चित्रित किया हैं। इस परिवेश में कुछ विदेशी व्यापारी, स्वदेशी व्यापारी, भिन्न-भिन्न पेशों के लोग तथा इन सबके आपसी संबध रंग ढंग, कचहरी हवालत, आदि से संबधित घटनाएँ और प्रसंग आये हैं। इस समूचे परिवेश चित्रण में लेखक की दृष्टि आलोचनात्मक रही हैं। वह यथार्थ के सद-असदरूप की पहचान भी उभारता चला हैं। उस के सामने यथार्थ का जो

चरित्रगत तथा परिस्थितिगत रूप रहा है, वह संश्लिष्ट और गहरा न होकर इकहरा तथा स्फीत है।'' अनेक प्रकार के चरित्रों का उपन्यास में चित्रीत किया जाता था, व्यापारी विभिन्न पेशे के लोग रईस, मध्यवर्ग, इनके जीवन का यथार्थ का चित्रण भी हुआ हैं। यहॉ सिर्फ मध्यवर्ग को ही चित्रित किया गया हैं। उच्चवर्ग तथा दलित वर्ग यहाँ कही मौजूद नहीं । दुसरी बात यह हैं कि इस उपन्यास में दिल्ली को केंद्र में रखा गया हैं। उस समय में सामाजिक स्थिति परिवर्तित हो रही थी। समय के संदर्भो परिवेश और समाज के अनुरूप बदलते भारतीय जनमानस को अवलोकित किया गया है। यह मानस शहरी आकर्षण की ओर अत्याधिक अग्रेसर रहा है। ऐसे में दलित जीवन की वर्गीय चेतना जागृत हो रही थी। अतः इन उपन्यासों का मुख्य उद्देश यह राष्ट्रीय तथा सामाजिक जागृति की चेतना को विकसित करता रहा हैं। उपन्यास के माध्यम से आदर्श, उपदेश और नैतिक बोध की प्रतिष्ठा करना उपन्यासकारों का मुख्य लक्ष्य है। परिणामतः दलित जीवन और उनकी चेतना के अवलोकन में कभी नजर नहीं आती हैं।

प्रेमचंदपूर्व युग के उपन्यासों को मुख्य उद्देश सिर्फ लोंगो का मनोरंजन करना था, पाठक की कौतुहल वृत्ति बढाना और विस्मयजनक आनंद की सृष्टि करना हैं। दलित जीवन यथार्थ को उद्‌घाटित करने में यह उपन्यास असफल ही रहे है। इस प्रवृत्ति के उपन्यासों में देवकीनंदन खत्री ने चंद्रकाता, चंद्रकांता संतति', नरेंन्द्र मोहिनी, 'कटोराभर खून' आदि का सृजन किया हैं। इनमें ऐय्यारी, तिलस्मी, और जासूसी का बोध हैं। किशोरीलाल गोस्वामी के 'लवंगलता', 'जिन्दे की लाश', 'तिलस्मी शिशमहल', 'चपला', 'कनक कसूम', 'मस्तानी' आदि उपन्यास हैं, जिनमें एक जादूई यथार्थ जासूसी और तिलस्मी तत्वों का निरूपन हुआ हैं। गोपाल गहमरी के 'अद्‌भूत लाश', 'जासूस की भूल', 'खूनी का भेद', 'खूनी कौन?', बेकसूर को फाँसी, आदि उपन्यास हैं। जिनमें जासूसी और गुप्त कथाओं का उद्‌घाटन हुआ हैं। इन उपन्यासों के उद्देश एंव कथाविश्व को देखत हुए कही भी सामाजिक जीवन का यथार्थ या साधारण आदमी की सच्चाई प्रस्तुत नहीं होती हैं। ऐसा लगता हैं केवल बुद्धी कौशल्य, वैभव और गुप्त रहस्योद्‌घाटन करना ही उपन्यासकारों के लिए महत्वपूर्ण रहा हैं।

प्रेमचंदपूर्व उपन्यासो को यदि देखा जाए तो ऐतिहासिक उपन्यासों का भी लेखन हुआ है। जिन में गंगाप्रसाद के 'नुरजहॉ' 'कुमारसिंह सेनापति' किशोरीलाल

गोस्वामी के 'लखनऊ की कब्र' 'रजिया बेगम' व रंगमहल के हलाहल 'तारा' ब्रजनंदन सहाय का 'लालचीन' आदि का उल्लेख किया जाता हैं। इन उपन्यासों के केंद्रीय पात्र राजा महाराजा, सेनापति, दरबारीलोग, आदि उनसे जुडे आप्त संबधियों को रखा गया हैं। इनके वैभव एंव सम्पन्नता को देखते हुए वे दलित जीवन कही दिखाई देता नही हैं।

कुल मिलाकर प्रेमचंद पूर्व युगीन उपन्यासों में सामाजिक सुधार की बात उपदेशात्मकता, जासूसी, ऐय्यारी, तिलस्मी, नैतिकता, मनोरंजन को लेकर ही अभिव्यक्त हुई हैं। कही भी दलित जीवन यथार्थ को उद्घाटित नहीं किया गया। इसके कई कारण भी है एक तो तत्कालीन समय में जो भी साक्षर वर्ग था, जिसने अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण की थी वह विशिष्ट लोंगो का था, जिनका, स्तर, आय, व्यवसाय, पद, प्रतिष्ठा, पेशा, के आधार पर मध्यवर्गीय रहा है। साथ ही आर्य समाजी विचारधारा से प्रभावित हुए लोग भी थे। जिन्होने भी उपन्यास लेखन और उस विधा को आगे बढाने का कार्य किया है। लाला श्रीनिवासदास के संदर्भ में 'बच्चन सिंह' बताते है कि ''लालाजी लक्ष्मणदास की दिल्ली की कोठी के प्रमुख प्रंबधक थे उन्हें व्यापारी जीवन तथा मध्यवर्ग के बिगडे युवकों का व्यावहारिक अनुभव था।'' उन्होंने मध्यवर्गीय जीवन को चित्रित करने के लिए साहित्य के नये ढाँचे को खोजा। दुसरी बात यह भी थी कि अंग्रेजो की सत्ता में भारतीय समाज पीडित था। उनके लिए मुक्ति पाने का आंदोलन विभिन्न संस्थाएँ (आर्य समाज ब्राह्मो समाज) चला रही थी। उससे भी बहुत सारे लेखक प्रभावित थे। इसलिए लोंगो को जागृत कर अंग्रेजो की नीति और उनमें फँसे भारतीय मनुष्य खासकर मध्यवर्गीय लोंगो को राष्ट्रीय आंदोलन के लिए प्रेरित करना उपन्यासकारों के लिए मुख्य लक्ष्य रहा हैं। अतः प्रेमचंद पूर्व युगीन उपन्यासों में दलित जीवन चरित्र अपनी विशेषतओ सहित प्रकट नहीं हुआ हैं।

प्रेमचंद युगीन उपन्यास और दलित जीवन

हिंदी उपन्यास विधा को तिलस्मी और ऐय्यारी के सनसनीखेज तथा अविश्वसनीय वातावरण से बाहर निकालकर मानव जीवन की यथार्थ समस्याओं से सम्बद्ध करने एंव उसे एक सशक्त विधा बनाने का कार्य प्रेमचंद ने किया हैं। इस दृष्टि से वह युग निर्माता साहित्यकार हैं। उन्होंने उपन्यास साहित्य को यथार्थ की धरातल पर लाया है। उन्ही से हिंदी उपन्यास में दलित वर्ग के चित्रण का प्रांरभ भी होता

हैं। जहाँ तक मानव जीवन की समस्याओं और उसके यथार्थ आकलन का प्रश्न हैं, उपन्यास उनके लिए सर्वथा उपयुक्त विधा हैं। आधुनिक काल के अंतर्गत पूँजीवादी सभ्यता ने इस संदर्भ में कहा हैं – "Novel is the most important gift of Bourgeois or capitalist civilization to the world imaginative culture" ''नाटक संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला आदि नानाविध कलाओं का विकास आधुनिक काल में हुआ है, परन्तु इन सभी कलाओं का इतिहास प्राचीन है। फलतः उनका विकासकाल बहुत ही लम्बा है और उनकी प्रायः सभी समस्याएँ हल हो चुकी हैं। किन्तु उपन्यास की सारी समस्याओं में से केवल एक ही समस्या हल हुई हैं, वह समस्या बडी सरलतम् समस्या हैं – कथा कहने की समस्या। शेष सारी समस्याएँ नई हैं।'' Ralph Fox महोदय ने अपने ग्रंथ का नाम ही 'Novel and the People' रखा है, इससे एक बात तो निश्चित रूप से कही जा सकती हैं कि उपन्यास का लोंगों के जीवन से गहरा संबध है।

''प्रेमचंद सामाजिक उपन्यासकार है। सामाजिक उपन्यासकार वे इस मायने में हैं कि अपनी रचनाओं में उन्होंने जीवन को सामाजिक संदर्भ में अंकित किया है। अपनी रचनाओं को लोकयात्रा के लिए आलोक स्तंभ के रूप में पेश किया हैं। प्रेमचंद अपने युग की जडता को तोड उसमें एक प्रकार की गति लाने की चेष्टा कर रहे है।'' प्रेमचंद प्रथम भारतीय लेखक है, जिन्होने दलितो की भावनाओं को पहचाना और साहित्य में चित्रित किया वे अवर्णो और सवर्णो के बीच रोटी–बेटी संबन्ध स्थापित करना चाहते हैं। रोटी का संबध ''कर्मभूमि में स्थापित होता है और बेटी का संबध 'गोदान' में हिंदी उपन्यास के विकासक्रम में प्रेमचंद ने सन १९१८ में 'सेवासदन' का सृजन कर एक नये युग का आंरभ किया जिसे 'प्रेमचंद युग के नाम से जाना जाता हैं। यह युग सन १९१८ से १९३६ ई. तक याने प्रेमचंद की मृत्यु तक माना जाता हैं। प्रेमचंदजी ने अपने उपन्यासों में स्वंतत्रता आंदोलन का चित्रण तो किया है, साथ साथ समाज के उपेक्षित पक्ष जिनमें स्त्री, दलित, किसान, मजदूर, की समस्याओं का चित्रण उन्होंने किया हैं, विधवा विवाह, बेमेल विवाह, छुआछूत, उँच–नीच, गरीबी, अशिक्षा अंधविश्वास रूढिवादिता, आंडबर, पाखंड, आदि विषयों पर प्रेमचंद की लेखनी चली है। प्रेमचंद ने 'सेवासदन' (१९१८) 'वरदान' (१९२१) प्रेमाश्रय (१९२९) गबन (१९३१) कर्मभूमि (१९३३) गोदान (१९३६) और अधूरा उपन्यास 'मंगलसूत्र' की रचना की हैं। ''प्रेमचंद का यथार्थ

सतहपर फैली हुई गन्दगी नहीं है बल्कि मानव जीवन के बुनियादी प्रश्न, उसके अनेकानेक, बाहरी, भीतरी, स्वरूपों को बदलनेवाली परिस्थितियाँ, समस्याएँ, आपसी संबध और मानव-मन भीतर के अनेक गहन रहस्यमय सत्य यथार्थ हैं।'' प्रेमचंद के उपन्यासों के पात्र यह दलित जीवन की त्रासदी को जुझनेवाले ही हैं, जो ग्रामीण जीवन और नगरीय जीवन से बराबर संपर्क बनाए हुए जीवन सच्चाई को बयान करता हैं। 'सेवासदन' की शोषित स्त्री, प्रेमाश्रम में ज्ञानशंकर प्रभाशंकर, कमलाबाई आदि गरीब किसान है। 'रंगभूमि' का नायक सूरदास गरीब पीडित दलित चमार है प्रेमाश्रम में, प्रेमा पूर्णा, शोषित और कुठिंत नारियों हैं। कर्मभूमि में अछूत दलित पात्र आये है। 'गोदान' का शोषित किसान होरी और उनका परिवार भोला, नोहरी तथा हरकू चमार एंव सिलिया दलित वर्ग के हैं। इन पात्रों के द्वारा प्रेमचंदजी ने भारतीय समाज, उनका सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक यथार्थ प्रस्तुत किया है। गरीबी शोषन, उत्पीडन अन्याय अत्याचार, जातीय समस्या, भ्रष्टाचार स्त्री जीवन की व्यथा, मेहनतकश जनता का संघर्ष आदि अनेक जीवन संदर्भो का व्यापक प्रभावोत्पादक एंव मार्मिक अंकन प्रेमचंद ने किया है। 'गोदान' में किसान के साथ साथ दलित, मजदूर वर्ग की त्रासदी का भी चित्रण किया गया है। 'प्रेमाश्रम' में कुछ स्थलों पर दलित वर्ग का चित्रण मिलता हैं। घोंडो के लिए घास छीलना चमारों का काम था। वर्णव्यवस्था का परिणाम यहाँ दिखाई देता हैं, कि जाति के आधार पर काम यह करने पडते थे। एक चपरासी इस काम के लिए भगत को पकड लेता है तो वह कहता है - ''घास चमार छीलते हैं। यह हमारा काम नही।'' रंगभूमि का नायक सूरदास जाति से चमार है। इस उपन्यास में दलित वर्ग के एक व्यक्ति को पहली बार नायकत्व प्राप्त हुआ हैं। 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद के पात्र लडते है और यह सब अछूत है।

गोदान हिंदी साहित्य का महाकाव्य कहा गया है, जिसमें भारतीय किसान की जिंदगी कैसी है? वह कर्ज में जन्म लेता है, और कर्ज में ही मर जाता हैं, आर्थिक दृष्टि से जर्जर किसान की कथा हैं। इस उपन्यास में दलित वर्ग का चित्रण मातादीन - सिलिया की कथा के माध्यम से हुआ है। प्रेमचंदजी ने दलित नारी की स्थिति का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया हैं। जो सवर्ण दिन के उजाले में उनकी छाया मात्र से बचकर चलते है वे ही रात के अंधेरे में अपनी हवस का शिकार बनाते हैं। दलित नारी सवर्ण के लिए केवल भोग की वस्तु हैं। सिलिया जब मातादीन के यहाँ

सहुआयन के दो पैसे चुकाने के लिए सेर-भर अनाज देने लगती है तो मातादीन डाँटता हैं ''तुने अनाज क्यों दे दिया? किससे पुछ कर दिया? तू कौन होती हैं - मेरा अनाज देनेवाली'' तब सिलिया हक्का बक्का होकर मातादीन का मुँह देखती हैं। फिर अनाज ओसते हुए आहत से पुछती हैं तुम्हारी चीज में मेरा कुछ अख्तियार नही हैं। मातादीन कहता हैं - ''तुझे कोई अख्तियार नहीं हैं। काम करती है खाती है जो तू चाहे खा भी, लूटा भी तो यह यहाँ न होगा।'' सिलिया की स्थिति घायल पक्षी की तरह होती हैं। हालाँकि मातादिन ने सिलिया के साथ शारीरिक संबध बनाये हुए हैं। उसका उपभोग लेता हैं, मातादीन सिलिया के तलवे सहलाता हैं, उसने जनेऊ हाथ में लेकर कहा था - ''सिलिया, जब तक दम में दम हैं, तुझे ब्याहता की तरह रखुंगा। यह अकेले मातादीन और सिलिया का यथार्थ नहीं हैं बल्कि पूरे भारतीय समाज का यथार्थ हैं, दलित वर्ग के साथ कैसा व्यवहार होता हैं, दलित वर्ग जो गरीबी, निर्धनता, के कारण सबकुछ सहता हैं, उसे प्रतिकार करने की हिंमत यह अपनी परिस्थिति के कारण नही होती है, इसलिए सहने के सिवाय वह कुछ भी नही कर सकता हैं, साहित्य के माध्यम से दलितों की दयनीय स्थिति को उजागर किया जाता है, नहीं तो यह दलित समाज चुपचाप सबकुछ सहता हैं, जैसे किसी गरीब प्राणी को पिटा जाता हैं और वह चुपचाप सहता हैं, वैसे ही दलित समाज सदियों से सब कुछ सहता रहा हैं।

''मातादीन का सिलिया से अवैध संबध है। उससे उसे एक अवैध पुत्र भी है लेकिन इस स्थिति में भी वह उससे शादी करने को तैयार नही है। निरंतर शारीरिक संबध रखने पर उसके ब्राह्मणत्व पर कोई आँच नही आती, किंतु उसी औरत से शादी करने पर ब्राह्मणत्व नष्ट होने का खतरा है। उच्च वर्ग की इस दुहरी नैतिकता पर प्रेमचंद व्यंग्य करते है।''

प्रेमचंद युग में साहित्यकारों ने यथार्थ की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर अपनी रचनाओं को लिखा जयशंकर प्रसाद ने 'कंकाल' 'तितली' की रचना की जिसमें ग्रामीण जीवन के सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है। निराला ने 'अप्सरा' 'प्रभावती' 'निरूपमा' 'बित्लेसूर' 'मकरिश' 'चतुरीचमार' 'कुत्लीभाट, आदि का सृजन किया। जिनमें प्रगतिशील चेतणा प्रमाणित है। इसी समय विश्वम्थरनाथ शर्मा 'कौशिक' के 'माँ', 'भिखारिन' 'संघर्ष' जैसे आदर्श परक उपन्यास प्रकाशित हुए। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'ने 'घण्टा' 'चन्द हसींनो के खतुत' 'दिल्ली का दलाल'

'बंधआ की बेटी' 'सरकार' आदि का निर्माण हुआ। इसमें राजनीतिक, आर्थिक, समस्याएँ उजागर हुई हैं। इनके अतिरिक्त भगवती प्रसाद वाजपेयी, नरोत्तमदास, विनोदशंकर व्यास, ऋषभचंद्र जैन, सियारामशरण गुप्त, रुपनारायन, पाण्डेय, जगमोहन शर्मा, आदि ने भी उपन्यास विधा में कलम चलाई है इस सारे उपन्यासकारों ने कम अधिक मात्रा में दलित जीवन का चित्रण करने का प्रयास किया है। उग्र का 'मनुष्यानंद' के नाम से मिर्जापूर से प्रकाशित यह हिंदी साहित्य का पहला उपन्यास हैं जिसमें समाज की सबसे दलित और अछूत भंगी जाति की पात्र को नायिका का स्थान प्राप्त हुआ हैं। ''उग्र ने समाज के उस घोर यथार्थ का चित्रण किया है जिसमें तत्कालीन समाज पतनोन्मुख हो रहा था। 'उग्र'ने ही समाज के घृणित परिवेश का द्वार खोला था जिसमें मानवता अपने खंडित रूप में करूण आर्तनाद कर रही थी।'' इन उपन्यासों के कथासूत्रों में ग्रामीण और नगरीय जीवन ही ज्यादा चित्रित हुआ। मुखतः सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पहलुओं के यथार्थ को लेकर अभिव्यक्ति हुई हैं।

प्रेमचंदोत्तर युगीन साहित्य और दलित जीवन

प्रेमचंदोत्तर युग का समय १९३७ से १९४७ तक के कालखंड को माना जाता है, आठ अक्टूबर सन १९३६ को प्रेमचंदजी का निधन हुआ था. अतः उसके बाद की औपन्यासिक यात्रा को प्रेमचंदोत्तर काल कहा जाता हैं। इस युग के उपन्यास लेखन में अपेक्षाकृत अधिक विषय विस्तार दिखाई देता है, अनेक नऐ आयामों को लेखको ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया हैं। इस युग में ऐतिहासिक, सामाजिक मनोविश्लेषणात्मक, राजनैतिक उपन्यासों की रचना हो गई थी। व्यक्तिवादी चेतना का भी प्राध्यान्य रहा हैं। ईसाई पादरियों ने अपने धर्म का प्रचार और प्रसार करने हेतु हिंदु धर्म के नाम पर चलने वाले अनिष्ट रूढी, परंपरा, आचार, विचार, मूल्य, संस्कार को पहचाना और ऊन पर प्रहार करना शुरू किया। विशेषतः वे निम्न वर्ग दलित वर्ग के लोंगो के बीच जाकर उन्हें समझाने का प्रयत्न करते थे। कई बार उन्हें ईसाई धर्म में दीक्षित होने के लिए कई प्रकार के प्रलोभन भी दिया करते थे। ऐसे में समाज सुधारको में राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद विद्यासागर, ज्योतिबा फूले, पंडित रमाबाई इन्होंने समाज व्यवस्था को पहचाना और समार के भीतर की अस्पृश्यता को एक पाप और हिंदु धर्म पर लगा एक कलंक माना। प्रेमचंद युग के अनेक उपन्यासकारों ने इस समस्या को लेकर रचना की थी,

लेकिन यह पूरी तरह ते परिवर्तित नही हो गई थी यह समस्या प्रेमचंदोत्तर युग में भी विद्यमान थी। पहले जो अस्पृशता बाह्य प्रत्यक्ष, शारीरिक थी वह अब अधिक सुक्ष्म गहरी और मानसिक हो गई हैं। प्रेमचंदोत्तर युग में ऐसे उपन्यास मिलते हैं, जिनमें दलित जीवन का चित्रण मिलता हैं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास 'गोली' नाम का उपन्यास जिसमें राजस्थानी रजवाडों के अन्तःपुरो में काम करनेवाले दास-दासियों को गोले या गोली कहते थे। उपन्यासकार ने सांमतीकारों मे कैद मानवीय अधिकारो से वंचित दास-दासियों की पीडा को वाणी दी है। उपन्यास की नायिका चंपा ही वह गोली है, जिसका शारीरिक, मानसिक शोषण उसके मालिक द्वारा निर्दयता से किया गया है। उन्हे बाजारों में भेंड बकरियों की तरह बेंचा जाता था, उन्हे दहेज के रूप में भी दिया जाता था। उनका विवाह उनके ही किसी जाति के गोले से किया जाता था, लेकिन यह दासी सांमतो के रजवाडो में ही रहती थी अपना जीवन यह समर्पित करती थी। इस तरह से समाज के भीतर इन दासियों को कूचला जाता था। दलित जीवन की त्रासदी को लेकर यह उपन्यास हमारे सामने आता है, जिसमें छुवाछूत की समस्या भी दिखाई देती है - गृहस्थी के कामों में हाथ बँटाने हेतु चंपा संकोच के साथ कहती है ''मॉजी, मैं शूद्र हूँ आपकी रसोई मे नही आ सकती। पर काम मुझे भी चाहिए। दाल मैं धो दूंगी, चावल मैं साफ कर दूंगी, बर्तन मैं माँज दूगी।'' इस तरह दलित जीवन यह दिखाई देता हैं। 'बगूला के पंख', आ. चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास जिसमें एक ऐसे नायक का चित्रण हैं, जो भंगी जाति का हैं, लेकिन यह उपन्यास राजनेताओं के दोहरे व्यक्तित्व को लेकर हमारे सामने आता हैं। वह कैसे आगे तरक्की करता हैं, लेकिन अपनी जाँति छूपाता है कि उसके मार्ग का रोडा जाँति ना बने आज भी जाँति को छुपाया जाता हैं, अपना उपनाम यह दिया जाता है, अपनी जाति का समाज को पता ना चले ''अपने अपने पिंजरे' के लेखक मोहनदास नैमिशराय, इसके उदाहरण है। धर्मवीर भारती भी पिछडी जाती से हैं। यह बात अब शनैः शनैः प्रगट हो रही हैं।'' जाति ही व्यक्ति को समाज में अपना स्थान बना देती हैं। 'उदयास्त' भी चतुरसेन शास्त्रीजी का उपन्यास हैं, जिसमें नायक मंगतु चमार जाति का हैं, तो जाति पॉति के असमानता को लेकर पूरानी सामन्तों की ताकतों से संघर्ष करता है। मंगतु कहता है, ''हमारे करोंडो लोंगो पर ये लोग सदियों से जुल्म करते आये हैं। हम लोग जो कल तक अछुत थे आज हरिजन बन गये हैं, सदियों से

पद-दलित है। अब तो हमे उभरना होगा, अपने ही बलबुते पर।'' इस तरह दलित जीवन की, त्रासदी दिखाई देती हैं। डॉ. रांगेय राघव का उपन्यास 'कब तक पुकारू' प्रेमचंदोत्तर उपन्यास को नया आयाम दिया हैं। उपन्यासकार ने उसके आमुख में स्पष्ट किया है। ''युग प्रेमचंद से अब आगे हैं और केवल शोषण का आर्थिक पहलु देखना काफी नहीं हैं। शहरों में बैठने वाले आधुनिक नजरिये से सब कुछ देख सकते है, पर असली भारत गाँव में हैं, जो अब भी मध्यकालीन विश्वासों में ग्रस्त हैं। ये विश्वास मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था से नियंत्रित हैं। मैंने उनको प्रगट करने का प्रयास किया हैं। हो सकता हैं कुछ विशेषताएँ कर्नल की पत्तल मेहतर नही उठाते, न बेडिनी (वेडिया) की पत्तल उठाते हैं, पर ठाकूर उसी बेडिनी के साथ एक प्याले में शराब पीते हैं... सारी व्यवस्था अपने अन्ध विश्वासों पर जमी हुई हैं।''

यह उपन्यास इसलिए महत्वपूर्ण है कि दलितो के शोषण के नाना आयामों का चित्रण इसमें किया गया हैं। लेखक ने दलित जातियों पर सवर्ण वर्ग और पुलिस द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों का वर्णन संवेदनशील पद्धत्ती से किया है, जहाँ के आत्मसन्मान को चोट लगाने का प्रयास होता रहा है। पुलिस निर्दोष दलित लोंगो पर अत्याचार करती है और दुसरी तरफ उच्च वर्ग के लोंगो को सुरक्षा प्रदान करती हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' द्वारा लिखीत उपन्यास 'सरकार तुम्हारी आँखो में जिसमें निम्न वर्ग की स्त्रियों के जातीय शोषण का चित्रण किया है। दलित स्त्री का सुंदर होना एक अभिशाप है, क्योंकि उनका शोषन होता है और यह किसके पास दाद फरियाद लेकर जाएगें चुपचाप सबकुछ यह सहती हैं। 'गोविंद वल्लभ पंत का उपन्यास 'जुनिया' इसमें कुमाऊँ प्रदेश के डोम (अछुत) जाति के जुनिया नामक एक भूमिहीन किसान की व्यथा - कथा को लेखक ने मानवीय संवेदना और दर्द के साथ उकेरा है। वह खेतों में काम करता है, अन्न पैदा करता हैं, किन्तु उस पर उसका अधिकार नही है, गाँव के गुसाई जी उसके मालिक दाता सबकुछ है। उनके घरों में जो जूठन और उतरण से ही वह अपना गुजारा करता हैं। कडी मेहनत खेत मे करता हैं, लेकिन जेठ की कडी धूप में प्यास लगने पर जब गुसाई के बाऊडी से पानी पी लेता है, इसके लिए उसे न केवल फटकारा जाता हैं बल्कि उसे बुरी तरह पीटा भी जाता हैं। इस तरह से दलितों का उपेक्षित जीवन हमारे सामने आता हैं। नरसिंहराम शुक्ल जी का उपन्यास 'देवदासी' - देवालयों तथा मठो में रहनेवाली देवदासियों का यथार्थ चित्रण इसमे किया गया है। देवालयों में लायी गयी देवदासियाँ यह निम्न दलित

जातियों की ही होती है। उन्हे बहलाकर फुसलाकर राजी करते है, दलितों में अज्ञान के कारण उनमे इतना अंन्धविश्वास होता है कि देवी के नाम पर वे अपनी प्राण प्रिय पुत्री को अर्पण कर देते हैं। इसके पीछे गरीबी अज्ञान यह सबसे बडा कारण है। उच्च वर्ग कहता है कि देवी ने स्वप्न में दर्शन दिया है और तुम्हारी लडकी को माता देवदासी के रूप में चाहती हैं। एक बार जो कन्या देवदासी बन जाती है तो देवालयों के मठाधीश तथा उच्चवर्ग उसी का शोषण करते हैं, प्रस्तुत उपन्यास में दक्षिण भारत के भगवान सुब्रह्मण्यम् का मंदिर हैं। इस मंदिर मे देवदासी के रूप में दलित किशोरियाँ, बालाएँ, युवतियाँ, तथा प्रौढाएँ रहती है। वस्तुतः यह मंदिर व्याभिचार का केंद्र हैं। यह देवदासीयाँ इस नारकीय जीवन से उब चुकी है। प्रस्तुत उपन्यास में नायिका की माँ को देवदासी बनाया गया है। वह अपनी युवा लडकी का विवाह एक प्रौढ अंग्रेज अधिकारी से इसलिए करती है कि वह अपनी बेटी को देवदासी बनाना नही चाहती थी। जगदीश झा विमल का उपन्यास 'गरीब' जिसमे – उपन्यास का नायक कंचनदास एक छोटी जाति का व्यक्ति हैं। गाँव का जमीदार जीवनप्रसाद एक निर्धन गरीब, मजदूर जीवनदास की जमीन को हडपना चाहता हैं। यह जमीन जीवनदास की एक मात्र पूँजी है। जमीन ही नही जीवनप्रसाद कंचनदास के पुत्र मदनदास की पत्नी शामा को भी अपने चंगुल में फँसाना चाहता हैं। जीवनदास की पुत्रवधू श्यामा सुंदर है, अतः जीवनप्रसाद की कामुक दृष्टि उस पर मंडराती रहती हैं। उपन्यास के द्वारा यह ध्वनित हुआ कि दलित पिछडी जाति के लोंगो की बहन, बेटियाँ, बहुओं की इज्जत से खेलना गांव के उच्चवर्ग के लोग तथा जमींदार अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते है। इस प्रकार उपन्यास में दलित जातियों पर होनेवाले अत्याचारों का, अन्यायों का और उनके शोषण का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया हैं। गरीब व्यक्ति अपने जीवन को सरल पद्धत्ती से जीने का प्रयास करता हैं, जितनी जरूरते हैं उसी के अनुरूप वे अपना जीवन जीते है, कंचनदास निर्धन छोटी जाति का है परन्तू उसके परिवार के सभी व्यक्ति कर्मठ परिश्रमी, और ईमानदार है, काम करते ही रहते है, क्योकि काम के अलावा उनके मन में रोटी की चिंता यह हमेशा रहती है। उनके मन में कभी दुसरा विचार नही आता हैं तो जमीदार जीवनप्रसाद एक धूर्त कपटी, और दुराचारी व्यक्ति हैं, उसके पास धन हैं, इसलिह वह हमेशा अपने अहम में रहता है। दुसरों का बुरा चाहता हैं, मानवता से उसका दूर–दराज तक भी कोई सम्बन्ध नही हैं। लेकिन उसका भी कभी अच्छा नही होता हैं, इस प्रकार यह एक

आदर्शवादी उपन्यास हैं जिसमें बुरे कर्म का बुरा फल चित्रित किया हैं। प्रो. इन्द्र विद्यावाचस्पति का उपन्यास 'जमीदार' प्रस्तुत उपन्यास में जमीदारो के अत्याचारों का यथार्थ वर्णन किया है, जमीदार गाँव के किसान, मजदुरों को लूटने का कार्य करते हैं वह तो अपने हवेली में रहते हैं, किंन्तु मजदुरों की मेहनत की रोटी भी नसीब नही होती हैं, गरीबों के पास समस्याएँ सदा रहती हैं, उनकी पूर्ति के हेतू वह जमीदार के पास चले जाते हैं, तथा जमीदार यह गरीबो को जो पैसा देता हैं उसकी जमीन तथा अंगुठा वह लगा लेता हैं और एक तरह से जमीदारों के चंगूल में मजदूर फँसता ही रहता है, लगान, दस्तुरी, उधार, तथा बेगारी के शस्त्रों द्वारो वे गाँव के गरीब, निम्न जाति के किसानों को आहत करते रहते हैं। इसके मूल में उनकी अशिक्षा हैं। जमीदार किसी गरीब को यदि उधार भी देता हैं, तो उसे चुकाने के लिए उनकी कई पुश्तें गुजर जाती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में मंगतराम, हरकराम और जगतु जैसे दलित किसान हैं जो जमीदार विश्वप्रताप के अत्याचारों का शिकार होते हैं। किसान तथा गरीब यदि मेहनत मजदुरी करेंगे तो ही उनका घर चलता हैं, यदि बीमार हो जाए तो मजदूरी भी डूब जाती है, पैसा भी नही आता तो एक समस्या उसी के सामने आ जाती है, मंगतराम को डर था फलतः वह जमीदार की बेगारी पर नही जा सका। जगतु का विवाह मुनिया से होता है। विवाह और बीमारी के कारण गरीबों को जमीदार के द्वार पर जाना पडता हैं। और जमींनदार फिर इनका शोषण करते रहते हैं। जगतु की पत्नी मुनिया देखने में सुन्दर और सुडौल थी, विश्वप्रताप का दिल उस पर आ जाता है। वह चाहता है, कि मूनिया भी काम के लिए उसके घर आ जाए खेत में मजदूरी करे ताकि एक दिन वह उसे अपने हवस का शिकार बना सके। जगतु अपने मालिक की प्रवृत्ति को जानता था इसलिए वह भेजने से इन्कार कर देता है। जमींदार सोचता हैं, कि अब इन सभी को ही सबक सिखाना होगा और उनके ऊपर लगान बकाया का आरोप लगाया जाता है। पैसे के आगे सब झूक जाते हैं। तहसीलदार भी जमींदार का ही पक्ष लेता हैं। जमींदार के कारिंदे लगान वसूली के लिए जब आते हैं तब उनके भय से सभी लोग भाग जाते हैं। जमींदार यह गाँव के मजदूर तथा अन्य लोंगो को पिटते हैं, कोडो से बुरी तरह से पिटाई होती हैं। विश्वप्रताप के भय से जगतु दुसरे गाँव भाग जाता है, पर मंगतराम अपना घरदार छोडकर नही जाता बल्कि जमीदार के अत्याचार को सहने को तैयार हो जाता हैं।

वह सोचता है जो भी हो यही स्विकार है अपना मन बना लेता है, जगतु जहाँ

कही भी गया हो, वहाँ दुसरा विश्वप्रताप नही होगा इसकी कोई गांरटी नही है, गाँव गाँव में जमीदार होते है, और हम सभी को काम के लिए उनके पास जाना ही होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामन्तवादी व्यवस्था में दलित वर्ग के लोग जमीदारों के नारकीय व्यवहार को सहन करने के लिए तैयार है, जमींदार इनके साथ मनचाहा व्यवहार करते है, लेकिन यह दलित अपनी रोजी रोटी के लिए एक पशुवत जीवन जीता है, सबकुछ सहता है और चुपचाप बैठ जाता है, यह भी समय निकल जाएगा। इस तरह दलितो का जीवन हैं'' मारे सामने आता है, वह हमेशा कुचला जाता है। 'कभी न कभी' – वृन्दावनलाल वर्मा का यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, लेकिन इसमें एक सामाजिक समस्या का भी चित्रण यह किया गया हैं, उपन्यास मे देवजू और लक्ष्मण नामक दो मित्रों के जीवन को चित्रित किया गया हैं। यह दोनों भी दलित हैं, दोनो भी प्रेम से अपना जीवन जीते हैं, एक दिन हरलाल अपनी पुत्री लीला को लेकर उनके यहाँ रहने को आता हैं। उसके मन की इच्छा थी, कि हरलाल लीला का विवाह लक्ष्मण से करना चाहता था, लेकिन दोनो भी लीला की ओर आकृष्ट होते है। दुसरी ओर लीला केवल लक्ष्मण से ही प्रेम करती थी और उसी से विवाह करना चाहती थी। परन्तु लक्ष्मण में उस समय आदर्श मित्रता का भाव निर्माण होता है, उसे लगता हैं, कि यदि मैं लीला के साथ जीवन आरंभ करूंगा तो देवजु को बहुत बुरा लगेगा और अपने मित्र के सुख के लिए वह अपने प्रेम की कुर्बानी देना चाहता हैं। वह चाहता है कि देवजु का विवाह लीला से हो। दोंनो मित्रों की आदर्शवादी भावात्मकता के बीच लीला के मन की कोई चिन्ता ही नहीं करता हैं। अपने अपने दोस्ती के खातीर लीला की परवाह नही की जाती हैं, उसके भी मन में क्या चल रहा हैं यहाँ नही देखा जाता हैं, देवजु को इस तथ्य का पता चल जाता हैं कि लीला लक्ष्मण से ही सच्चा प्रेम करती हैं। अतः उसके प्रयत्नों से फिर लीला और लक्ष्मण का विवाह हो जाता हैं, परन्तु लक्ष्मण देवज के कारण दुःखी रहने लगता हैं। ऐसे में उसे ज्वर आने लगता है और एक दिन बुखार की ही स्थिति में वह अपने मित्र देवजु के लिए कन्या खोजने के लिए साइकिल लेकर निकल पडता है। रास्ते में घने जंगल में लक्ष्मण की मुठभेड अजगर के साथ होती है। लक्ष्मण किसी प्रकार बच जाता है और अपने मित्र देवजु के लिए उसके योग्य कन्या खोजने में सफल हो जाता है। उस कन्या से वह देवजु का विवाह करवाता है। इस प्रेमकथा के साथ–साथ लेखक ने निम्न श्रमिक वर्ग के लोंगो की सामाजिक,

आर्थिक समस्याओं को और उनके संघर्षो को यथार्थतः चित्रित किया है। लेखक प्रस्तुत उपन्यास द्वारा यह तथ्य रेखांकित करना चाहता हैं कि निम्न मानवीय जाती के लोंगो में भी सच्ची मित्रता और उच्च आदर्श भाव हो सकते हैं। इतना ही नही वे उसके लिए कुछ भी कर ने के लिए सदैव तत्पर पाये जाते हैं। 'अधूरी नारी' यह उपन्यास उदयराजसिंह का हैं, जिसमें स्वच्छंद प्रेम का चित्रण भी हैं, साथ ही साथ मे दलित जीवन की समस्याओं को भी लिया गया हैं, उपन्यास की नायिका 'नीना' स्वच्छंद और बंधनमुक्त प्रेम चाहती हैं, उस पर भाई और पति अंकुश लगाते है, अपनी स्वच्छंदता के कारण नीना अपने अंतिम दिनों में बहुत दुःख पाती हैं। जब तक शरीर साथ देता हैं, तब वह मदमस्त जीवन को जीती हैं, लेकिन जवानी ढलते ही उसे असहाय का आभास होने लगता हैं, और अपने बीते हुए जीवन पर उसे पछतावा आता हैं, वह देखती हैं कि किरण जो उसकी नौकरानी हैं, परन्तु उसके विचार यह संपुर्ण भारतीय हैं, उसे रमेश से प्रेम होता हैं, लेकिन अपनी अवस्था दुसरों के यहाँ काम करके जीवन जीना पडता है, अपनी दीन हीन अवस्था को जानकर वह अपने मन को ही मार देती हैं, और विवाह नही करती बल्कि अपनी जीवन को ही त्याग देती हैं, अरमानो को वह बर्दास्त करती हैं, अतः वह अपना संपुर्ण जीवन को सेवा व्रत में निकाल देना चाहती हैं। यहीं पर उपन्यास के उत्तरार्ध्द से अछुतों और दीन-दुखियों की समस्या का निरूपण होता हैं। किरण अब तक जो नीना के साथ रहकर अनेक प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक कष्ट को वह झेलती है, अतः वह आचार्य रामगिरी के आश्रम में जाती हैं, नीना का भाई राजेश किरण की ओर आकृष्ट होता है, वह उसे पाना चाहता है, परन्तु किरण वहाँ से भी भाग निकलती है, और रामगिरी के आश्रम में सेवाव्रत आंरभ करती हैं, हरिजनों की सेवा करती है, यह हरिजन बहुत मटमैले तथा गंदगी के कारण बीमारियों से त्रस्त हैं उन्हे सफाई से रहने की सलाह देती हैं जब गाँव मे दुसरे सवर्णो के द्वारा पानी के प्रश्न को लेकर झगडा होता हैं, तो वह उनका पक्ष लेती हैं। यहाँ दलितों का जीवन दिखाई देता हैं, किस तरह की त्रासदी हैं, आचार्य रामगिरी किरण के दुःख को समझने पर उसके आगे के जीवन मे आशा हो इसलिए एक हरिजन शिशु को उसकी गोद में डाल देते हैं। किरण उसे सौरभ कहकर बुलाती है और अपना मातृत्व उस पर उडेल देती हैं। अपना प्यार वह और पर लूटा देती है और अविवाहीत रहते हुए भी एक बच्चे की माँ बनना पंसद करती हैं, और अपने हृदय में मातृत्व का भाव निर्माण

करते हुए सौरभ का पालन पोषण करती है। इस तरह से इस उपन्यास में एक और स्वच्छद प्रेम तथा दुसरी ओर भारतीय प्रेम के आदर्श को चित्रित किया है, तथा दलितो के जीवन को आचार्य रामगिरी के माध्यम से चित्रित किया है। 'पीले पत्ते' कुँवर कृष्णकुमासर सिंह का उपन्यास सामाजिक समता को निर्माण करना चाहता है, अन्तर्जातीय विवाह को लेकर यह उपन्यास है, लेखक जाति, वर्ण आदि की सीमाओं का उल्लंघन कर मानव जीवन की एकता को स्थापित करना चाहता हैं। जाति की दीवारों को ढहाने के लिए अन्तर्जातीय विवाह का होना आवश्यक माना हैं। उपन्यास का नायक अशोक कुलीन घराने का है पिता गाँव के बडे जमींदार है, उसका प्रेम चमार नन्हकू की बेटी केतकी से हुआ है, वह उससे शादी करना चाहता हैं, किंन्तु अशोक के पिता परिवार तथा बिरादरीवाले यह सब मिलकर इस विवाह का विरोध करते हैं, फिर भी अशोक केतकी से विवाह करता हैं, अशोक का मित्र मुसलमान अशगर भी मूनियाँ नामक एक अछुत कन्या से विवाह करता हैं। समाज के भीतर यदि यह अन्तर्जातिय विवाह होते हैं तो सामाजिक विषमता कम हो जाएगी। अन्तर्जातिय विवाह के विरोध के मूल में हमारी प्राचीन वर्ण व्यवस्था है। वह चाहती है कि निम्नवर्ग जो कर्म के आधार पर नही वर्ण के आधार पर कार्य करता रहे। इसलिए वह वर्णव्यवस्था को बचाए रखने का प्रयास है, तथा समानता नही लाना चाहते हैं। अन्तर्जातिय विवाह को मान्यता नही देता नवसुधारवादी उपन्यासकारों ने विद्रोह का झंडा फहराया अपने उपन्यासों मे अन्तर्जातिय विवाह संपन्न भी करवाया हैं। अन्तर्जातिय विवाह के साथ अनमेल विवाह को चित्रीत किया हैं, अशोक के पिता पुराने विचारों के पक्षधर है वह जाँति कुछ ही देखते हैं, बाकी कुछ भी नही देखते, पूत्री विमला का विवाह ठाकूर दलजितसिंह से करते हैं वह अनेक दुर्गुनों की खान हैं, सिर्फ अच्छा कुल हैं। इन्ही दुर्गुणों के कारण उसकी हत्या होती हैं, और विमला युवा अवस्था में ही विधवा हो जाती हैं। विमला के विधवा होने पर उसके पिता कहते हैं ''वह अपनी बाकी जिंदगी भाई की छाँह में काट दे और परमात्मा की शरण ले।'' अशोक अपनी बहन का पुनर्विवाह करना चाहता है, परन्तु विमला पुराने मूल्यों से इतनी दबी हुई है, कि वह इसके लिए तैयार नही होती हैं। अशोक मन में चित्कार कर उठता हैं ''वह शुभ दिन कब आएगा जब उस शारीरिक अग्निदाह की प्रथा से अत्यधिक भीषण इस मानसिक अग्निदाह की प्रथा का नाश सदैव के लिए पुरा हो जाएगा।'' इस प्रकार विधवा विवाह न करना

तथा पुराणे मूल्यों के लेकर जीवन जीना बडा कठिन हैं, दुसरी और लेखक यह दिखाता हैं, अशोक अछुत की कन्या केतकी से विवाह इसलिए कर पाता हैं कि वह शिक्षित हैं और केवल अपने पिता की जमींदारी पर निर्भर नही हैं। केतकी का जीवन खुशहाली से व्यतीत होता हैं तो विमला का जीवन पिढादायक दिखाई देता है यह सामाजिक परिवर्तन का लाना उपन्यासकार का प्रमुख लक्ष्य हैं, इस तरह दलित जीवन का चित्रण किया है। 'मलिन' यह उपन्यास साधूसरण पुष्प का इस में रुढिग्रस्तता सामाजिक कुप्रथाओं का चित्रण किया गया हैं, इसमें मंगल यह जमीनदार का बेटा हैं क्षत्रीय जाति का हैं। पिता का नाम शिवशरणसिंह हैं। वे प्राचीन विचारधारा के हैं, मंगल का प्रेम छोटी जाति की लडकी लाली से हैं। वह उससे शादी करना चाहता हैं, किन्तु मंगल के माँ तथा पिता उसका विवाह उच्च जाति की चम्पा नामक स्त्री करते हैं जो पाश्चात्य सभ्यता में पली तथा बडी हो गई हैं। उसका रहना, खाना, बात करना, चाल, ढाल, आचार, विचार सब पाश्चात्य सभ्यता के हैं। दुसरी और मंगल का पूरा घर परिवार यह सनातनी विचारधारा का हैं। इस बीच मंगल की अवस्था बहुत दीन हीन हो जाती हैं, एक और युरोपियन वातावरण सभ्यता की यह पत्नी तथा दुसरी ओर माँ पिता बीच में मंगल का अमंगल होता है।

लाली मंगल के जीवन को मंगलमय कर सकती थी, किन्तु छोटी जाति की होने के कारण दूर ही रहती है। यहाँ दो नारिया की स्थिति एक और निम्न जाति की लाली वह सुशील, संस्कारी, भावनाशील, हैं तो दुसरी ओर चम्पा कुलिन होते हुए भी स्वच्छद तथा नये विचारधारा की हैं। पाश्चात्य सभ्यता के परिणाम स्वरूप वह सिर्फ अपना सुख ही देखती है उसके लिए बाकी सबकुछ गौण है। वह अपनी मान मर्यादाओं को भी भूल गई हैं। यह सब कुछ देखकर मंगल अपना घर ही छोडकर चला जाता हैं, फिर चम्पा का जीवन भी कष्टमय, पीडादायक बन जाता हैं। लेकिन इतना सबकुछ होने के बावजूद भी लाली अपनी मर्यादाओं को नही भुली हैं, वह इसी का फायदा नहीं उठाती है बल्कि लाली पुनः मंगल और चंपा को मिलवाती हैं। इस प्रकार मलिन कही जानेवाली लाली कर्तव्यो की बलिदेवी पर अपने प्रेम का उत्सर्ग कर देती हैं। यहाँ दलित कभी भी मौके का फायदा नही उठाता बल्कि वह जीवन का सही ढंग से मर्यादाओं से जीना जानता हैं। प्रेम, त्याग, बलिदान यह सिर्फ उच्च वर्ग के पास ही नही हैं, बल्कि निम्न जाति के लोंगो में भी इस प्रकार के भाव पाये जाते हैं।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में सामायिकता और आँचलिकता को प्रधानती दी है। स्वांतत्र्योत्तर काल में यह उपन्यासकार मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के साथ साथ बदलते हुए स्वांतत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन से भी प्रभावित हो रहे थे। इसलिए उन्होंने स्वांतत्र्योत्तर युग में धीरे धीरे भारतीय लोक संस्कृति, आदिवासी जातियों, अविकसित क्षेत्रों एंव भौगोलिक अंचलो की समस्याओं ने उपन्यासकारों का ध्यान आकृष्ट किया और वे इनकी अभिव्यक्ति की ओर उन्मुक्त हुए। प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों ने सामाजिकता मनोविज्ञान के साथ साथ, दलित, शोषित, सर्वहारा वर्ग को भी केंद्र मे रखकर उपन्यास साहित्य लिखा। मजदूर सर्वहरा वर्ग केंद्र में रखने की प्रेरणा उन्हें मार्क्सवादी विचारधार से मिली इसलिए रामदरश मिस्त्र कहते हैं – ''प्रेमचंदोत्तर सामाजिक उपन्यासों में मार्क्सवाद का स्तर प्रधान न भी रहा हो किन्तू उसका प्रभाव निश्चय ही अंतर्निहित रहा है।''

रचनाकारों ने समाज की विषमता को नष्ट करना चाहा हैं जब तक यह विषमता को दूर नही करता तब तक समाज के भीतर अन्याय, अत्याचार होता ही रहेगा, कभी किसान, मजदूर, अबला स्त्री जिनका कोई नही हैं, निर्धन है उच्चवर्ग के लोग उन्हे परेशान ही करेगे इस तरह की स्थितियाँ प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों में दिखाई देती हैं।

अतएव प्रेमचंदोत्तर युग में भारतीय स्वंतत्रता प्राप्ती के समय तक उपन्यास विधा के भीतर अनेक धाराएँ यह विकसित होती हुई दिखाई देती है। एक ओर यह भी दिखाई देता है, उस समय स्वाधीनता के आंदोलन में ऐसे नायकों को सामने रखा जो समाज तथा राष्ट्र के लिए कुछ कर सकते हैं तो कुछ रचनाकारों की दृष्टि इस ओर भी गई है, व्यक्ति स्वंतत्रता को महत्व देकर अस्तित्वादी चेतना को आगे बढाया, तो दूसरी और समाज के भीतर जीनेवाला दलित वर्ग को भी सामने रखा उनके जीवन की त्रासदी का भी चित्रण यह किया गया है। सामाजिक यथार्थ को सामने रखते हुए समाज के भीतर की आम आदमी के जीवन में कौन कौन से बदलाव आए है इसी को भी चित्रित यह किया गया है। समाज के भीतर रहनेवाला दलित समाज आर्थिक अभाव एवं सामाजिक शोषण के कारण दलित वर्ग विशेषकर ग्रामीण चेतना से युक्त नयी पीढी का युवा वर्ग अपने जीवन में द्वंद्वात्मकता को महसूस करता हैं। एक और यह दिखाई देता हैं, कि स्वाधीनता आंदोलन यह तेजी ले रहा था, तो दुसरी ओर समाज में व्यक्ति का जीवन यह कुंठित बनता जा रहा था। सभी

भारतीयों के दिल में स्वाधीनता की पुकार यह दिखाई देती है, अग्रेजों का जूल्म एक ओर तो दुसरी ओर समाज का उच्चवर्ग की दलितो के ओर देखना का नजरीयाँ दिखाई देता हैं। दलितों का जीवन बडा ही कठिन दिखाई देता हैं, बेरोजगारी, अभाव, जातीय शोषण, अपमान, दयनीयता, असफलता, भटकन, निराशा में जीवन व्यतीत कर रहा था। उसकी यथार्थमूलक व्याख्या प्रेमचंदोत्तर युग में की गयी हैं। जिसे स्वंतत्रता प्राप्ती के बाद अत्यंत गहराई से प्रस्तुत किया गया हैं।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में दलित जीवन

स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थितियों में अनेक बदलाव यह हमारे सामने आते है, अंग्रेजो की सत्ता जैसे ही समाप्त होती हैं, एक आजाद भारत देश तथा समाज के भितर एक नयी जीवन शैली यह हमारे सामने आती हैं। हिंदी उपन्यासों में यथार्थ का ऐसा परिदृश्य प्रस्तुत हुआ, जिसमें बहुमुखी सृजन की संभावनाएँ थी। आजादी के बाद उपन्यास ने अपने समय के लायक परिदृश्य को टटोलते हुए छः दशकों की यात्रा की। अनेक विषयों को लेकर यह उपन्यास यह लिखे जा रहे थे। उपन्यास विधा के बिच ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनितिक, समाजवादी, आँचलिक , व्यक्तिवादी, मनोवैज्ञानिक, स्त्री-जीवन दलित जीवन, आदिवासी जीवन को लेकर हिंदी उपन्यासों का लेखन यह हमारे सामने आता हुआ दिखाई देता है। इन उपन्यासकारो का मकसद यह था की तत्कालीन परिवेश को आधार बनाकर अपना लेखन करते थे।

स्वांतत्र्योत्तर उपन्यासों की छहः दशको की विकासयात्रा में समय के साथ बदलते भारतीय जनजीवन का चित्रण उपन्यासों में किया गया हैं। स्वतंत्रता के पश्चात सबसे बडी त्रासदी यह देश विभाजन की दिखाई देती है, विभाजन की लकीर से भारतीयों को तोड दिया गया था, एक संघ जो भारती था समाज के भीतर का अपनापन, भाईचारा जो था विभाजन की एक रेखा ने ही मानवीय भावनाओं को भी विभाजित किया गया, उपन्यासों में हिन्दु-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे और देश विभाजन की त्रासदी का चित्र प्रस्तुत किया गया। आजादी को लेकर जो सपने देश की जनता ने देखे थे उसके टूटने से पैदा हुए मोहभंग की स्थिति और चिंतित मनुष्य का अवलोकन कुछ उपन्यासकारों ने संवेदशीलता से किया। इसी समय उपन्यास मे ग्रामीण जीवन के आँचलिक संदर्भो की नीव रखी गई, ग्रामीण परिवेश का भी चित्रण उपन्यासों में लिखा जाने लगा था। अनेक पहलूओं को सामने रखने की कोशिश इन उपन्यासकारों में दिखाई देती हैं।

साठोत्तरी भारतीय परिदृश्य के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संदर्भो के अनुसार लेखन करनेवाली पीढी ने उपन्यासों के माध्यम से प्रगतिशील विचारधारा को आगे बढाया, समाज के भीतर नया विचारधारा को रखने का प्रयास भी इन लेखकों का दिखाई देता है। तथा इस समय, ग्रामीण, नगरीय, महानगरीय, मध्यवर्गीय, दलित, आदिवासी, जीवन के यथार्थ की प्रस्तुति सूक्ष्मता से की गई है। समय के साथ साथ समाज की विविध प्रकार की जीवन की त्रासत्री का भी चित्रण यह किया जाने लगा था। सातवे दशक तक उपन्यास की यात्रा का विस्तार हो चुका था। आजादी के बाद देश में औद्योगिकरण की प्रक्रिया बढते जा रही थी। जिसने भारतीय समाज को प्रभावित किया। भारतीय मानस पर आधुनिकता के कारण नये मूल्यों का निर्माण यह हो रहा था, तथा नयी संस्कृति का आगमन भी हो रहा था। ऐसे विषय परिस्थितियों में समाज दिखाई दे रहा था। एक ओर प्राचीन परंपरा उसके सामने थी तो दुसरी ओर आधुनिक जीवन शैली के बीच समन्वय स्थापन करने का प्रयास वह करता हैं। आधुनिक जीवन शैली के आने से उसके सामने अनेक समस्याओं का सामना यह करना पड रहा था। जीवन में अंतर्गत और बहिर्गत समस्याएँ तेजी से बढ रही थी। इन सब से उलझना मनुष्य को पडता था, पीडा त्रासदी ऊलझने, शोषण के अनुभव मनुष्य ने महसुस ही नहीं किये, बल्कि भोगता रहा। नई नई संभावनाएँ सामने थी, मनुष्य उसी को प्राप्त करने का प्रयास करता हुआ दिखाई देता है, नही मिलने पर दुःख यह उसके चेहरे पर दिखाई देता है। चिंतित मनुष्य के जीवन संदर्भो के विभिन्नमुखी आयामों को साँतवे दशक के उपन्यासकारों ने अभिव्यक्त किया हैं। इस दशक में सृजन के विषय में विभिन्न परिदृश्य दिखाई देते हैं। समय और परिस्थितियों के बदलाव का परिणाम यह साहित्य पर दिखाई देता है, आठवे दशक से समकालीन दौर की शुरुवात मानी जाती है। समकालीनता के आंरभ की नीव सातवे दशक में ही रखी गई थी, लेकिन उसका विकसीत रूप यह आठवे दशक से माना जाता हैं। यहाँ उपन्यासकारों ने समाज के भीतर का वास्तविक रूप चित्रित करने का प्रयास किया था। इसी दौर में हिंदी साहित्य में विमर्श के नये – नये क्षितिज खुले। साहित्य की सभी विधायों पर लेखन प्रारंभ हो गया था। उपन्यास विधा इन सबसे पीछे कैसे रह सकती है? उपन्यास में भी दलित विमर्श, स्त्री और आदिवासी जीवन की व्यथा और अभिशाप से भरी जिंदगी के कटु यथार्थ को संवेदनशीलता से अभिव्यक्त किया। मानवजीव की त्रासदी

को ही साहित्य में यथार्थवादी दृष्टि से लिखा गया था, अंतिम दशक तक आते आते उपन्यास विधा ने मानव जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नही छोडा जिसकी ओर उंगलिनिर्देश किया जा सके। यहाँ दिखाई देता है, सभी क्षेत्रो पर कलम यह चलाई गयी थी। यहॉ केवल उपन्यास विधा का ही जिक्र इसलिए कर रहे है कि हमारा विवेच्य विषय भी उसी विधा से संबद्ध हैं। साथ ही 'स्वातंत्र्योत्तर' शब्द जोडकर उसकी सीमा भी निश्चित कर देना इसलिए उचित होगा की स्वंतत्रता के पहले साहित्य में या प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य में न तो इस प्रकार के वर्ग संघर्ष का कोई स्वरूप बना हुआ अभिलिखीत हैं जैसा कि आज कल हैं और न इस प्रकार का वर्ग-विभाजन मध्यकाल तक मिलता है, जिसमें से किसी एक वर्ग को दलित या वंचित जैसा कोई नाम दिया जा सके। यह सब आधुनिक काल की देन हैं। इस संदर्भ में श्री तेजसिंह अपने एक लेख ''हिंदी उपन्यास दलित-विमर्श'' का पूराख्यान में लिखते है - ''सही मायने में आजादी के बाद ही दलितो की समस्याओं पर केंद्रित उपन्यासों की संख्या में वृद्धी हुई है, क्योंकि आजादी के बाद स्वयं दलित-पिछडे वर्ग में अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता बढी है।।'' हिंदी के आंरभिक उपन्यासों में दलित पात्र प्रायः दीन-हीन और हेय व्यक्ति के रूप में ही आते हैं। मानविय समता और स्वांतत्र्य की चेतना से दूर-दूर तक भी कोई संबध इन उपन्यासों का नही हैं। अधिक से अधिक तो उनके जीवन एंव उनकी समस्याओं को विशेष रूप सें सहानुभूति, संवेदना, गांधीवादी विचारधारा एंव समाज सुधार के रूप में चित्रित किया गया हैं। वैसे तो हिंदी में मराठी की प्रेरणा से सत्तर-अस्सी के दशक में दलित लेखन आरंभ हुआ। पहले आत्मकथाओं के माध्यम से अपने जीवन की त्रासदी को लेकर लिखा जाने लगा अनेक जीवन संघर्षो को यहॉ रखने का प्रयास उन लेखकों ने किया है, ओमप्रकाश वाल्मीकी का 'जूठन', मोहनदास नैमिशराम की 'अपने अपने पिंजरे', कौसल्या बैंसत्री का 'दोहरा अभिशाप' आदि साहित्य के माध्यम से दलित साहित्य रचा गया। ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में कहें तो 'हिंन्दी साहित्य को ब्राह्मणवादी पिंजरे से मुक्त कराने का श्रेय किसी को जाता है तो केवल मुंशी प्रेमचंद को। उनकी कहानियों, उपन्यासों, तथा हंस पत्रिका के संपादकीय लेंखो आदि में दलित चेतना मुखर हुई है।'' इस तरह से स्वांतत्र्योत्तर साहित्य में दलितों के प्रति लेखन का आधार प्रेमचंद को ही माना जाता है। उनकी रचनाओं से श्री तेजसिंह आगे इन लेखको ने लिखने का प्रयास यह किया गया है।

उपन्यास के केंद्र में दीन-दरिद्रो को रखा गया था सिर्फ प्रेमचंदजी ने, प्रेमचंद की सबसे क्रांतिकारी देन यह थी कि उन्होंने उन व्यक्तियों को कथा का केंद्र बनाया जो कि साहित्य और जीवन की परिधि से बाहर समझे जाते थे।'' उपन्यास सम्राट प्रेमचंद को इसलिए माना जाता है, कि मनोरंजन की धरातल से उपन्यास विधा को बाहर निकालकर यथार्थ की भूमि पर लाने का श्रेय यह उन्ही को जाता है, हिंदी साहित्य में दलित जीवन को सबसे पहले उन्होने व्यक्त किया हैं। यद्यपि हिंदी में विशुद्ध दलित साहित्य ज्योतिबा फूले और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के जीवनादर्शन पर आठवे-नौंवे दशक में लिखा गया। किन्तु आजादी के पश्चात्य लिखे गये उपन्यासों में 'नागार्जुन, रेणू, भैरवप्रसाद गुप्त, उदयशंकर भट्ट, देवेन्द्र सत्यार्थी आदि उपन्यासकारों ने जमीदारों द्वारा दलित वर्ग के आर्थिक-शारीरिक शोषण का गहरी सहानुभूति और वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ रूपायित किया है। अतएव स्वांतत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों की विकासयात्रा में मानव जीवन की वास्तविकता, समय की सच्चाई, सामाजिक आर्थिक संदर्भ, राजनीतिक, परिस्थिती, सांस्कृतिक पक्ष, वर्गीय चेतना लोकतांत्रिक विकास में बदलते मनुष्य जीवन संदर्भ आदि के बहुमुखी यथार्थ का प्रस्तुतीकरण हुआ है। अतः स्वांतत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों का दलित चेतना के संदर्भ में प्रस्तुत किया जानेवाला विमर्श छठें दशक के इन्हीं उपन्यासों से आंरभ किया जा रहा हैं। बलचमा (१९५३) मे नागार्जुन के एक दलित पात्र जूलाहा परिवार के एक बालक - 'बलचमा' को नायक बनाया है। गाँव में दलितो की ओर देखने का सवर्णो की मानसिकता को उजागर करने का प्रयास किया गया है, दलित यह दीन हीन कार्य करें तथा वह सिर्फ हमारे सेवा के लिए है, ऐसी मानसिकता यह दिखाई देती हैं। 'बलचमा' वेदना और विद्रोह के साथ साथ यह दिखाया है कि गाँव के अन्य दलित पुरूष सवर्णो के नौकर है और उनकी औरते उनकी यौवन पूर्ति का एक साधन मात्र। गाँव में दलित वंचित है, सब सुविधाओ से, खानपान सभी में वह दुसरों पर आश्रित है, सवर्णो की झूठन पर वे पलते है, उसी को अपना सर्वस्व मानते है, इसी को अपनी नियति मानते हुए जिंदगी गुजारते है, किंन्तु नई पिढी के युवाओं की सोच में बदलाव यह आया है। समय के साथ साथ और आंबेडकरी दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है, नयी पिढी के युवाओं की सोच में परिवर्तन यह आया है। अब जूठन को अपनी नियति के साथ नहीं मगर असंतोष के साथ स्वीकार करते है। ''मिला क्यों नही, लेकिन स्नेह और जतन से नहीं। अमृत भी अगर

दुतकारकर मिले तो क्या मिला? उस मिलने से न मिलना लाख गुणा अच्छा है।'' दलित गरीबी, अशिक्षा के कारण लाचार है। उसका कोई नही हैं, मजदूरी के कारण इधर उधर जाना पडता हैं, तो अकेला होने कारण सबकुछ वह सहता है, अन्याय को चुपचाप सहन कर लेते है, जबकि लेखक ने बलचमा को अपने हक और स्वाभिमान के लिए जूझते हुए दिखाया है - ''मगर आखिरी दम तक मै तेरे खिलाप डटा रहूँगा। अपनी सारी ताकत को तेरे विरोध में लगा दूँगा। माँ और बहन को जहर दे दूंगा लेकिन इन्हें अपनी रखैल बनाने का सपना कभी पूरा न कर सकेगा ।'' यहाँ लेखक ने दलितो की स्थिति को उजागर करने का प्रयास किया है, तथा गाँव के भीतर उन पर होनेवाले अन्याय और अत्याचार को भी व्यक्त किया है, दलितो की दयनीय स्थिति का केवल वर्णन ही नही किया है बल्कि उनमें चेतना का संचार भी किया है। ''जैसे अंग्रेज बहादूर से सोराज लेने के लिए बाबू भैया लोग एक हो रहे है, हल्ला, गुल्ला और झगडा झंझट मचा रहे है उसी तरह जन-बीहहा कुली और बहिया-खव्वास लोंगो को हक के लिए बाबू भैया से लडना पडेगा।'' इस प्रकार नागार्जुन ने बलचनमा के माध्यम से शोषित पीडित लोंगो को टूटते अवश्य दिखाया है, पर झूकते नही। दलितों की परिस्थितियो में समय के साथ एक नया परिवर्तन अन्याय के खिलाफ लडने की एक ताकत उनके भीतर कही ना कही दिखाई देती है। उसी को चित्रित करने का प्रयास यह उपन्यासकार द्वारा किया गया हैं। संघर्ष करने का प्रयास अब दलितो के भीतर दिखाई देता है, यह सब आंबेडकरी दर्शन का परिणाम हैं। 'मैला आँचल' उपन्यास मे रेणू ने पूर्णिया के दलित जीवन का चित्रण गहरी संवेदनशीलता के साथ किया है। मेरीगंज गाँव जातियों के आधार पर अनेक टोलो में बटा हुआ है। इनमें से कुछ टोले दलित जातियों और आदिवासियों के हैं, जो निहायत गरीब, अशिक्षित, बेरोजगार, अंधविश्वासी और बौद्धिक दृष्टि से पिछडे हुए है। गाँव के सभी बडे-बडे किसानों के अपने-अपने मजदूर टोले है, जैसे-सिंघजी का टोला - सतमा और पासवान टोला, तसहीलदार साहब का पोलिया टोला, धानूक टोला, कुर्मी टोला और कोयरी टोला, खेलावन यादव का गुवार टोला और कोयरी टोला। संथाल टोले पर किसी का खास अधिकार नहीं है। इन जातियों में बात-बे-बात परस्पर झगडे होते रहते हैं। कायस्थ-राजपूत और यादव परस्पर झगडते है और उन्हें लडाने का कार्य ब्राह्मणों का है क्योंकि उनकी संख्या सबसे कम हैं। उपन्यास में दलित वर्ग का चित्रण भी पर्याप्त मात्रा मे मिलता है।

धनुकधारी टोला, दुसाध टोला, कोयरी टोला तथा संथाल टोलो की बात आती है। इन टोलों की जातियों को हम दलित वर्ग के अंतर्गत रख सकते हैं। मालिक टोला, कायस्थ टोला, राजपूत टोला, के लोग दलित जातियों का हर प्रकार से शोषण करते हैं। गाँव का चित्रण जहाँ उपन्यास के केंद्र में पूर्णिया जिले का मेरी गंज है जिसमें ब्राह्मण, राजपूत, यादव और कायस्त इत्यादि जातियों के लोग रहते है, जात-पात के आधार पर इस गाव का विभाजन हुआ हैं। किसान जमीनदार-मंहत जैसे वर्गो की समस्याओं की ओर भी लेखक ने संकेत किया है। डॉ. कूँवरपाल सिंह कहते है कि ''मैला आँचल में रेणू का उद्देश किसी अवधारणा चरित्र का निर्माण करना या किसी 'हीरो' की स्थापना करना नही हैं। उन्हे तो मेरी गंज को जैसा कि वह हैं उसी रूप में पाठकों के सम्मुख रखना हैं। उपन्यास का नायक मेरी गंज का हैं वह गाँव जैसा है अच्छा भी और बुरा भी - उसे उसी रूप में रखना हैं। वहाँ के मनुष्य ही है न कि देवता या दानव। ग्रामीण जीवन में जातिवाद कितना सुदृढ हैं जो राजनीतिक रूप धारण करता जा रहा है तथा वर्ग संघर्षो को कुंठीत कर रहा हैं। इस तथ्य की और रेणू ने सर्वप्रथम पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है।'' उपन्यास में उकेरता हुआ लेखक मानव संवेदनाओं, मूल्य संघर्षो और वर्ग संघर्षो की कहानी को दर्शाता है।

प्रस्तावना में उन्होंने कहा है मैला आँचल एक पिछडे हुए गाँव की कथा है। इसमें फूल भी है, शूल भी है, गुलाल भी है कीचड भी है, चंदन भी है, सुंदरता भी है, कुरुपता भी है। उपन्यास मे जो चीज सबसे पहले सामने आती है, यहॉ के उच्चवर्ग जमीदार तथा तहसीलदार का शोषण, जातिगत के आधार पर आपसी फूट यहॉ दिखाई देती है। यहाँ काम कर रहे दलित पीडित अपना जीवन जीते हैं, मजदूरी करते हुए, या बटाईदारी पर खेती करते है उन्हें भरपेट भोजन और तन ढकने के लिए कपडा भी नही मिलता है और रहने के लिए घास फूस की झोपडी में उनकी सारी जिंदगी कट जाती है। गरीबी के कारण मेहनत मजदूरी तो दुसरी ओर गाँव के सभी बडे लोग दलित जाति के स्त्रियों के साथ शारीरिक संबंध रखते हैं। इस यौन-शोषन के पिछे उनकी गरीबी भी एक मुख्य कारण है। रमजूदास की पत्नी कलिया की माँ से कहती है ''तुम लोगों को न तो लाज है न शरम। कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारी वाली साडी चमकाओगी? आखिर हद होती है किसी बात की। मानती हूँ कि जवान बेटी दूधार गाय के बराबर होती है। मगर इतना मत दूहो कि देह का खून ही सूख जाय।'' अभिप्राय यह कि निम्न जाति की स्त्रियों के साथ इस प्रकार के

संबध एक आम बात है और लोग इसे अधिक गंभीरता से नहीं लेते। गाँव के लोगों की मानसिकता यह कि व्यक्ति कर्म से नहि बल्कि जाति से बडा होता है, चाहे वह कैसा भी क्यो न हो उसकी जाति महत्वपूर्ण होती है। सिपहैया टोली वाले भोज के समय ग्वालो के साथ पंगत में बैठने के लिए तैयार नही हैं। लोंगो के मन में में जातिवाद इतना घर कर गया हैं कि डॉक्टर जब गॉव में पहली बार आते है तो सबसे पहले लोग उसकी जाति को जानना, चाहते हैं, वह कौन कैसा है? इससे उनको कोई मतलब नही है, डॉ. प्रशांत ठीक ही सोचते हैं – ''जाति बहुत बडी चीज हैं। जात पात नही मानने वालों की भी जाति होती हैं। सिर्फ हिंदू कहने से पिंड नही छूट सकता। ब्राह्मण हैं! कौन ब्राह्मण। गौत्र क्या हैं?'' गाँव में जाति ही सबकुछ होती हैं।

मेरी गंज भारत का एक प्रतिनिधि गाँव हैं, संकुचित प्रवृत्ति यह भारतीय ग्राम जीवन की कमजोरी यहाँ भी देखी जा सकती हैं। राजनीतिक दल और नेता परस्पर एक दुसरे के साथ लडते है, जिसका कारण व्यक्तिगत द्वेष ही है। गाँव के भितर लढाई होती है, किसी को भी आगे नही आने दिया जाता है, कॉग्रेसी बालदेव समाजवादी कालीचरण और कम्युनिस्ट डॉ. प्रशांत गाव के फलक पर उपस्थित होते है। सभी राजनीतिक दल जनता के साथ बडे बडे वादे सिर्फ करते लेकिन जनता के भीतर कोई बदलाव यह नही होता है। साधारण कार्यकर्ता और गरीब जनता की स्थिति दिन प्रतिदिन बिगडती जा रही है। बावनदास इस दशा पर दुःखी है परंन्तु वह भी कोई हल नही खोजता, किसानी जिंदगी बहुत शोचनीय बनती जा रही हैं, सभी सिर्फ अपना स्वार्थ देखते है, ''यह बेमारी उपर से आई है। यह पटनियाँ रोग हैं। अब तो और धूमधाम से फैलेगा। भूमिहार, राजपूत, कैथ, यादव, हरिजन, सब लड रहे है।... किसका आदमी ज्यादे चुन आये इसी की लडाई है। यदि राजपूत पार्टी के लोग ज्यादा आये तो सबसे बडा मंत्री भी राजपूत होगा। उपन्यासकार यहाँ यह दिखाने का प्रयास कर रहे है, कि जाति की राजनीति सबसे महत्वपूर्ण है उनके इस वक्तव्य से बालदेव सोचता है कि ''वह अब अपने गांव में रहेगा अपने समाज में, अपनी जाति में रहेगा जाति बहुत बडी चीज है। जाति की बात ऐसी है कि सभी बडे-बडे लीडर अपनी-अपनी जाति की पार्टी में है। यह तो राजनीति है।'' इस प्रकार नये नये जातिय समीकरण यह प्रस्तूत उपन्यास के भीतर दिखाई देते है। डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में कहा जा सकता हैं कि इस उपन्यास में लेखक ने अंचल

विशेष की कथा ही नही कही है बल्कि, अपनी सशक्त व्यंग्य शैली से कथा को इस प्रकार नियोजित किया हैं कि समस्त अंचल सजीव होने के साथ साथ समस्त जीवन के सौदर्य-असौदर्य सद्-असद की ओर बडी ही सुक्ष्मता से संकेत करता है और इस प्रकार यह कथा अंचल के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, मानव-संवेदनाओ, मूल्य-संघर्षो और अन्तविरोध ग्रस्त वर्ग - चेतनाओ की कहानी बन जाती है।''

उपन्यास 'धरती धन ना अपना' का पात्र कालीचरण पिछडे और उपेक्षित अंचल की नयी पीढी के विद्रोह को मूखरित करता हैं। कालीचरण पढा लिखा कम है, किंन्तू उसमें एक सुझ-बुज दिखाई देती हैं, उसकी बुद्धी सामान्य हैं, फिर भी उसके चरित्र में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो उसे लोकप्रिय बनाती हैं। वह कर्मशील और निष्ठावान युवक है। वह गाँव में क्रांति लाने का प्रयास करना चाहता हैं, वह मजदूरों के मन में चेतना जगाना चाहता हैं। इन सबको देखने के बाद कोई अब हमें इन सब से मुक्ति दिलाने वाला हैं, यह देखकर युगों से पीडित, दलित और उपेक्षित लोंगो को एक राहत मिलती हैं। वह कहता हैं मैं आप लोगों के दिल में आग लगाना चाहता हूँ। सोए हुए को जगाना चाहता हूँ।... आप अपने हकों को पहचाने। आप भी आदमी है, आपको आदमी का सभी हक मिलना चाहिए। इस तरह के आव्हान से उनमें एक नई चेतना जागृत हो जाती है। स्वंतत्रता प्राप्ति के पश्चात दलित वर्ग को समता का जो अधिकार विवशतापूर्वक ही सही सवर्णो द्वारा दिया जाने लगा, उसका चित्रण भी उपन्यास में हुआ है। रेणूजी ने इस उपन्यास मे दलितो की स्थितियो का उनके जीवन का भी चित्रण यह किया गया हैं। दलितो को उच्चवर्ग से हमेशा दूर ही रहना चाहिए वह किसी भी परिस्थिति में उच्चवर्ग के आसपास ना बैठे यह ध्यान उच्चवर्ग रखता है - ''तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद के दरवाजे पर पंचायत बैठी है। दोनो तहसीलदार के अगल बगल में बालदेवजी और कालीचरण बैठे है। बामन-राजपूत के साथ में बैठा है यादव एक ही उँचे सफरे पर। अरे! जीबेसर मोची भी उसी कम्बल पर बैठा है।'' यह उपन्यास तत्कालीन समय के दलितो के जीवन की त्रासदी को मार्मिकता से व्यक्त करता हैं। इस प्रकार 'रेणू' ने दलित जीवन का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है साथ ही साथ सवर्णो के विरुद्ध इनके विद्रोह का भी चित्रण किया है। देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने 'ब्रह्मपुत्र' (१९५६) शीर्षक दुसरे उपन्यास में असम के पेट में बसे विशाल द्वीप-माझुली और उसके तट

पर स्थिति दिसाँगमुख के दलितों की व्यथा कथा प्रस्तुत की हैं।

'सागर लहरे और मनुष्य' (१९५६) में उदयशंकर भट्टने मुम्बई के पश्चिमी तट पर स्थित वर्सोवा के मछुआरों की जिंदगी का मार्मिक चित्रण किया हैं। उपन्यासकार ने मछुआरों के दुःख दर्द, अभावगस्त जिंदगी समुद्र के साथ उनके संघर्ष आदि का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया हैं। हिंदी साहित्य में उनकी ख्याति एक कवि और नाटककार के रूप है किंन्तु प्रस्तुत उपन्यास को अपने अछुते विषय वस्तु के कारण उन्हे काफी ख्याती प्राप्त हो गई हैं। सागर के तट पर रहकर पूरा जीवन ही सागर पर निर्भर रहता है, कभी जाल में मछली फसती है तो कभी नही फसती फिर भी जीने का संघर्ष इन में दिखाई देता है। मछली पकडने के लिए समुद्र में आठ आठ दिन रहना पडता हैं इनके उपरान्त उनके जीवन की त्रासदी का चित्रण इस के भितर किया गया हैं। प्रस्तुत उपन्यास में वर्णित बस्ती वर्सोवा का असली नाम विसावा है। यह मुंबई के अंधेरी से पश्चिम की तरफ लगभग तीन-चार कि. मी. दूर है। इसमें बसने वाले मछवारों के बारे में लेखक ने कहा है - ''... इस जाति को कोलि कहा जाता है।'' इसमें कोलि जाति की गरीबी, अशिक्षा और शोषण का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है, सामान्यतः कोलियों का जीवन बहुत ही कष्टदायक है इतनी मेहनत करने के उपरान्त उनको कम पैसे मिलते है, कभी मिलते है कभी नही लिहाजा जीवन जीने के लिए संघर्ष करना पडता है। यह तट पर रहनेवाले कोलि उनकी भी दो जातियाँ है, दोंनो का आपस में विवाह संबंध नही होता परंतु खाने-पीने में दोंनो में कोई भेद नही है। छोटी सी बस्तीयों में रहते है, गरीबी के कारण इनके मकान भी अधिकतर कच्चे और छप्पर वाले। आदमियों की पोशाक एक बनियान या कमीज, नीचे घूटनों से उपर तिकोना रंगीन रूमाल पहने रहते है। स्त्रियां रंगीन लाँगदार साडी या धोती पहनती है, ऊपर चोली। मछली पकडने के लिए इन्हें पाँच-पाँच या कभी कभी आठ आठ दिन समुद्र में रहना पडता है। साथ में खाना नही ले जाते या प्राकृतिक आपदा के कारण कच्ची मछलियों को खाकर अपना पेट भर लेते है। उपन्यासकार ने कोलियों की जीवन की भंयकर दरिद्रता को उजागर करने का प्रयास किया हैं, यह कोलि गाते है हँसते है लेकिन इनके घरों के भीतर क्या चल रहा हैं, इसी का चित्र हमें उपन्यासकार ने उपन्यास में दर्शाया है - ''इकठा के घर चार दिन से दिया जलाने केरोसीन नही था। उसकी माँ तीन दिन से भूखी थी। इकठा की इच्छा चिउडा खाने की हुई तो जागला कहता है, चिउडा क्या हम लोग कु खाने की चीज

है? अमीर आदमी खाता है चिउडा भजिया।'' यहॉ लेखक का मुख्य उद्देश कोलियों के कंगाली, दिवालियेपन की निशानी है। वह अशुभ माना जाता है। परिस्थिति के कारण जीवन के लिए यह कुछ भी करते है, रत्ना इस उपन्यास की नायिका है, वह भी यहाँ के वातावरण से उबकर शहर की ओर आकर्षित हो जाती है। मुंबई के समीप होने के कारन वह नगरीय जीवन की ओर आकर्षित होती है। नगरीय जीवन की चकाचौंध उसे अपनी तरफ खिचती है। अतः मुंबई जाकर वह नर्स बनने में कामयाब होती है और नर्स बनने के उपरांत एक डॉक्टर का हृदय जीतने में भी सफल होती है। यहाँ एक ओर भूख की समस्या दिखाई देती है, तो दुसरी ओर मायानगरी मुंबई है। एक ओर उच्चवर्ग है तो दुसरी ओर गरीबी की पतझड में जीता हुआ मनुष्य दिखाई देता है। इस उपन्यास मे दलित जीवन का एक नया पक्ष उद्घाटित होता है कि कोली जाति में पुरुषो पर स्त्रियों का वर्चस्व पाया जाता हैं। आर्थिक लेन देन तथा संचालन भी स्त्रियों के हाथ में रहता हैं। इस प्रकार यदि देखा जाए तो सच्चे अर्थो में स्त्री को यहाँ लक्ष्मी माना जाता हैं। इसके कारण स्त्रियों का शोषण और दमन नही होता। पुरुषो का काम हैं मछलीयों को पकडना और स्त्रियों का काम है उसे बेचना। मछलियों को पकडने के अतिरिक्त दुसरे सभी व्यावहारिक और सांस्कारिक कार्य स्त्रियों के जिम्मे रहते हैं। अतः इस रूप में स्त्रियो का पुरुषो पर एक विशेष प्रकार का वर्चस्व रहता हैं। यह अस्वाभाविक नही हैं प्रायः सभी दलित और श्रमजीवी जातियों में स्त्रियों को बराबरी का दर्जा मिला हुआ हैं। दुसरी और कोली समाज के भीतर यौन पवित्रता का कोई महत्व नही है, यहॉ अधिकांश स्त्री-पुरुषो में अवैध संबध पाये जाते हैं।

''वंशी के घर आने से पहले विठ्ठल ने जवानी में कई खेल खेले थे, कई औरतों से प्रेम किया था। इकठा माहिम के एक मछूए के यहाँ रह चूकी है। रत्ना के घर के नीचे की मंजिल में एक परिवार में एक कुमारी लडकी के गर्भ रह गया था।'' इस तरह से यह उपन्यास दलित जीवन की त्रासदी को ही व्यक्त करता हैं, यहाँ सबकुछ हो रहा हैं उसी का एक कारण यह हैं की गरीबी, अशिक्षा, और निर्धनता के कारण उन्हे ऐसा जीवन जीना पडता है। 'लोहे के पंख' (१९५७) उपन्यास में हिंमाशु श्रीवास्तव ने एक ऐसे दलित पात्र का चित्रण किया हैं, जो मजदूर से किसान बनने की लालसा में जीवन संघर्ष करता हुआ आखिरकार मजदूर और अंततः रिक्शा ड्राइवर के रूप में अपनी जिन्दगी व्यतीत करता हैं। उपन्यास का

नायक मंगरुआ चमार अपनी संघर्षपूर्ण मार्मिक आत्मकथा लेखक को सुनाता हैं, मजदूरी करने की पंरपरा यह बहुत पुरानी हैं, उसके चार पुश्ते की हैं, ऐसा ही जीवन वे जीते आए हैं, यह सबसे बडी त्रासदी हैं, पिता जो काम करता हैं, पिता के बाद बेटा ही वह काम करता हैं, इस तरह से खानदानी मजदूरी की परंपरा यहाँ दिखाई देती हैं। प्रारंभिक जीवन में मंगरुआ अपने दादा और पिता की शोषित अवस्था को निकट से देखता हैं। अपने मालिक की सेवा करना खानदानी हो गया हैं, मंगरुआ का दादा सांमतवाद से दबा किंन्तु स्वामिभक्त नौकर है। वह अपने मालिक की सेवा करना वृत्त था, वह भूखे रहकर भी मालिक की सेवा करता था, उच्च वर्ग इन मजदूरों के कार्य तथा सेवा का कुछ भी असर उन पर नही होता हैं, बेचारा मजदूर यह सोचता हैं, कि मैं जादा ईमानदारी से काम करता रहूँगा तो मालिक कुछ हमारा भला करेगा किंतू यह होता नहीं हैं, बच्चा बाबू उस शोषक वर्ग के प्रतिक है, जो शक्ति के बल पर शोषण करना अपना दैविक अधिकार मानते है। शोषित वर्ग यह सब चूपचाप सहता हुआ दिखाई देता है, कभी वह साहस करता है अपने हक की मांग करता है, तो उन्हें जमींदारों के जुल्म का शिकार होना पडता है। जानवरो की तरह पीटा जाता है, उस पर इतना जुल्म किया जाता है, कि दुबारा वह बगावत नही कर सकेगा गुप्तागों में मिर्च भरने तक उसे जलील किया जाता है उनके आतंक से मजदूर अपने को असहाय पाते और उनके इरादे पर चलना अपना धर्म ही समझते है। गरीबी बेसहारा के कारण दलितों को जो भी काम मिलता है उसे पेट के लिए करना पडता है, वह चुपचाप सब कुछ सहता रहता है, वे मार खाते, बेगार करते है भुखे पेट सोते है। मरणासन्न बाप को छोडकर मंगरू को बेगार में जुटना पडता है। इससे उसके पास दुसरा कोई मार्ग भी नही है। दलितो की जो दयनीय स्थिति थी, उसका सजीव चीत्रण उपन्यास में मिलता है। लेखक ने गाँव में रहनेवाले दलित वर्ग की गरीबी बेबसी, निरक्षरता, अंधविश्वासग्रस्तता आदि पर गंभीरतापूर्वक विचार किया हैं। उपन्यासकार नागार्जून ने 'वरूण के बेटे' (१९५७) में बिहार के मिथिला अंचल मलाही - गोढियारी अँचल के मछूआरों के जीवन को समग्रता से चित्रित किया है, उनका जीवन तथा संघर्ष का यह चित्रण है। मछुआरों की मूल संपत्ती है गढ पोखर। इस गढ पोखर को वहाँ के जमींदार किसी भी तरह हथिया लेना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में गरीब है डर जाऐगे और इन सभी पर वह अधिकार पाना चाहते है, पंरन्तु मछुआरे अपने हक और अधिकार के लिए संघर्ष करते है- ''पानी और

माटी न कभी बिके है, न कभी बिकेंगे। गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं वह तो हमारे शरीर का लहू है। जिन्दगी का निचोड है।'' वे किसी भी अवस्था में गढ पोखर को नही जाने देना चाहते है, अपने हक की लडाई के लिए संगठित होकर अंत तक डटे रहना चाहते है - फिर चाहे सरकार हो या अमलदार ''इन्कलाब जिन्दाबाद'' मछुआ संघ जिंदाबाद... हक की लडाई जीतेंगे! जीतेंगे! गढ पोखर हमारा है, हमारा है।'' यहाँ यह मजदूर किसी भी तरह अपने गढ पोखर को जमीदार के पास नही जाने देते हैं। इसके लिए वह अपना सर्वस्व त्याग देना चाहते है, क्योकि उसी पर ही उनका जीवन यह हैं। इस तरह से दलित जीवन की दशा और दिशा यह हमारे सामने आती हैं।

रांगेय राघव ने अपने महत्वपूर्ण उपन्यास ''कब तक पूकारू'' में करनट जाति के यथार्थ का विशद् एवं सूक्ष्म समग्र चित्रण किया है। यह उपन्यास इस लिए भी महत्वपूर्ण है, इसमें दलित शोषण के नाना आयामों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने दलित चेतना को प्रस्तापित करने का कार्य किया हैं। उपन्यास के संदर्भ में रांगेय राघव का मन्तव्य है - ''इस कथा को वर्णनात्मकता मेरी हैं परंन्तु तथ्य उसी (सूखराम) के है।' इसका सीधा अर्थ यह हैं कि रांगेय राघव ने एक सूनी हुई कहानी के आधार पर यह उपन्यास लिखा हैं। उपन्यास राजस्थान और ब्रज की सीमा पर बसे गाँव और वहॉ के लोगो के अज्ञान, अशिक्षा, अन्धःविश्वास, गरीबी, और शोषण को उनके रीतिरिवाजो व परम्पराओं को साथ सामने लाता है। करनट घूमंतू जाति है। गाँव के चमार करनट और मेहतरो को अपने से नीचा समझते है। इसके जरीए उपन्यासकार कहना चाहते है कि दलितो में भी उँच-नीच स्तर भेद की भावना विद्यमान है। चमार ढेड कहलाते थे, पर भंगियों से उतनी ही नफरत करते है जितनी उँची जात वाले चमारो से। प्यारी भी जातिय दर्प के नशे में सूखराम से कहती है देख में भंगी चमारिन नहीं जो मरद की गुलाम बनकर रहूँ। ऐसे प्रंसगो से दलितों में परस्पर प्रेम सौहार्द नही राग द्वेष की भावना उत्पन्न होती हैं। उपन्यासकार ने समाज के भीतर कैसे कैसे प्रजातियॉ हैं, तथा उनका जीवन यह कैसे जीते हैं, इसी को भी चित्रित करने का प्रयास यह किया गया हैं। करनट एक ऐसा समाज हैं जीने के पास अपने जीवन को जीने के लिए कोई स्थायी व्यवसाय नही होता हैं। उनके पास किसानों की तरह ना खेती होती हैं और न ही उनको निजी तथा सरकारी संस्थानो में सेवा करने का अवसर ही मिलता हैं। वे अपने पेट के लिए बास, बल्लियों पर उछल कुदकर

अपने चमत्कार दिखाते हैं, शहद इकठ्ठा करके बेचते हैं, चोरी करते हैं और उनकी पलियॉ तथा लडकियाँ उच्च जाति के लोगो के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित कर कुछ कमाई कर लेती हैं। यही उनके जीविकोपार्जन के साधन हैं सभ्यता की दूहाई उठाकर पीडा-सा धन देकर अपनी यौन-वासना की तृप्ति करते हैं। नरियों का यह आर्थिक और सामाजिक शोषण शताब्दियों से इसी प्रकार चला आ रहा हैं और समाज भी उसमें विशेष परिवर्तन नही ला पाया हैं। इस जाति की चेतना इतनी मर गयी हैं कि उनके पुरुषो को भी इस घृणित कार्य में कोई अनौचित्य नही दिखता हैं।

उपन्यास का नायक सुखराम एक करटन है परन्तू अन्य करटन से थोडा भिन्न है क्योंकि उसकी चेतना में एक बात बैठी है, कि उसका पिता कोई करटन नही ठाकूर है और उसकी रंगो में ठाकूर का खून बह रहा है। उसे ऐसी अवस्था में नफरत लगने लगती है, एक स्थान पर सूखराम आक्रोश भरे शब्दों में कहता है - ''यहाँ एक आदमी देवता है पर हम तो कमीन है। वे बडे लोग क्यों करते हैं ऐसा? क्यों वे अपने धन और हुकुमत के लिए अत्याचार करने में नही काँपते? तू (सूखराम की पत्नी प्यारी) चूप है। तू जवाब नही देती। नट की छोरी पर जवानी आती है और गन्दे आदमी उसे बेइज्जत करते है, फिर भी रण्डी की तरह जिये जाती है। मर क्यों नही जाती? हम सब मर क्यों नही जाते?'' यह अपने जीवन को जीने के लिए रास्तो पर खेल दिखाने के कार्यरत हैं। खेल दिखाते समय सूखराम की पत्नी प्यारी पर दारोगा का दिल आ जाता हैं और वह उसे प्रेमलीला के लिए अपने यहॉ बूलाता है प्यारी सूखराम के डर से इन्कार कर देती हैं। परन्तू प्यारी के इस इन्कार से दारोगा का कोप करनट पर टूट सकता है इसलिए स्वयं प्यारी की माँ उसे समझाती है ''अरी यह तो औरत का काम है, उसे बताने की जरूरत ही क्या है? उसमें भला बुरा क्या? कौन नही करती?'' इस तरह करनट की जिंदगी जीनी पडती है डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त के अनुसार - ''इस उपन्यास में उत्पीडन एंव शोषित जन जातियों, विशेषतः करनट की व्यथा कथा, आर्थिक शोषण, सामाजिक, नैतिक मान्यताओं एवं उनके बीच से उभर रहे वर्ग संघर्ष को रूपायित करने का यथार्थवादी दृष्टि से प्रयत्न किया गया है।''

उपन्यास का संक्षिप्त कथासार इस प्रकार है, उपन्यास के नायक सुखराम की माँ नटनी थी। पिता भी करनट था। पर वह अपने आपको अधूरे किये का स्वामी का वंशज मानता था। उसके पिता सूखराम के दादा करनट बन गये थे। कूलाभिमान

की इस बात को लेकर सूखराम के माता पिता के बीच में प्रायः झगडे होते रहते थे। जिसका परिणाम यह हुआ की रोज रोज के झगडों के कारण उनकी मृत्यु यह एक दिन हो जाती हैं। सूखराम इधर बडा होता है, सूखराम को करटन की जिंदगी से नफरत है, क्योंकि वह एक उपेक्षित जन जाति हैं। यह उपेक्षा के पात्र हैं, उच्चवर्गीय समाज में इस जातियों के लोंगो के साथ जातीवाची शब्द प्रयोग होते हैं। सूखराम का व्यक्तित्व आकर्षक हैं, वह संघर्षशील है, परंन्तु परिस्थितियों के सामने उसे अपमानित होना पडा हैं। प्यारी और कजरी रुस्तमखाँ के अत्याचारो के उत्पीडित होकर एक दिन उसकी हत्या कर देती हैं। दुसरी तरफ धुपों नामक चमारिन के साथ बॉके तथा दो ठाकूर बलात्कार करते हैं। पूरी तरह से अत्याचारों से भरा जीवन यहाँ दिखाई देता है। रुस्तमखाँ और बॉके वाली घटना के बाद पूलिस का कहर चमारों पर टूट पडता है। महिलाओं की इज्जत लूटी जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने दलित जातियों पर सवर्ण वर्ग के लोग और पुलिस द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों का मार्मिक ढंग से वर्णन किया हैं। पूलिस निर्दोष दलित वर्ग के लोंगो पर अत्याचार करती हैं और दुसरी तरफ उच्च वर्ग के लोंगो को संरक्षण प्रदान करती हैं। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास दो समान्तर कथाओं को लेकर चलता हैं, पोलिटिकल एजेट सायर और सूशन को लेकर जो कथा चलती है उसमें हम सूखराम के चरित्र को एक उँचाई पर देख सकते है। गरीबी अज्ञानता और अशिक्षा के कारण इनमें स्वंतत्र विचार करने की क्षमता नही हैं। इसलिए भुत-प्रेत, जादू टोना, तन्त्र मन्त्र, में विश्वास करते है। यहॉ पुलिस, और उच्च जाति के लोग आज भी राजा और ईश्वर की तरह पूजे जाते है। उपन्यास का मूल उद्देश युगो से शोषित-पीडित लोंगो में वर्गीय चेतना पैदा कर संघर्ष के लिए प्रेरित करता हैं। निष्कर्ष रूप में देखा जा सकता है कि रांगेय राघव ने 'कब तक पूकारू' उपन्यास में एक ऐसे समुदाय के जीवन को उठाया हैं जो अब तक अछूता था। इस करटन की पीडा त्रासदी को साथ ही उसके अंदर दबी उसकी पूकार को रांगेय राघव ने 'कब तक पूकारू' मे अभिव्यक्ति दी है।

साठोत्तरी उपन्यासो में दलित जीवन

परती परिकथा यह उपन्यास फणीश्वरनाथ रेणू का है, जिसमें उन्होने अपने गाँव के परिवेश का चित्रण किया है, बिहार के पूर्णिया जिले के परानपूर गाँव तथा उसके आसपास फैली आबादी का चित्र इसमें चित्रित किया है, वैसे यह आँचलिक

उपन्यास हैं, किंन्तू दलित जीवन का चित्रण भी इस उपन्यास में हुआ है, इस क्षेत्र का लोक जीवन लोक संस्कृति तथा समय के साथ करवट लेता यहॉ का जनजीवन न जाने कब क्या और कैसे हाल में जीना पडता हैं। इस उपन्यास में कई ऐसे पात्र हैं जो दलित जीवन से हैं, सवर्ण सूवंशलाल के साथ महीचरन चमार की पुत्री मलारी का प्रेम का चित्रन किया गया हैं, महीचरण चमार की पढी लिखी लडकी मलारी हैं, उसके भी कुछ अरमान हैं, निम्न जाति तथा वहॉ का वातावरण पढ लिखने के बाद मन के भीतर विचारों में बदलाव यह आता हैं, तथा वह सवर्ण युवक सूंवशलाल के साथ गाँव छोड देती है, तथा नगर में बस जाती हैं, जहाँ वे आदालत में शादी कर देते है। लेकिन मलारी यह बडा कदम तो उठाती हैं, लेकिन फिर भी बिरादरीवाले तथा माता–पिता अपने बेटी के यह कार्य से असंतुष्ट है, अतः उसे अपने माता पिता जातिवाले के कोप व निंदा का शिकार होना पडता है। दलित जीवन की त्रासदी यहॉ दिखाई देती है, पढ लिखने से विचारों में बदलाव आता हैं तथा एक व्यापक फलक यह सामने दिखाई देता हैं, किन्तु गाँव तथा पंरपरा से चली आई रीतिरीवाजों के अनुसार आज भी दलित समाज जीवन जीता हुआ दिखाई देता हैं। उपन्यास में एक और ऐसा ही पात्र हैं, जो अपने आप को बडा समझता हैं, लूत्तो जो खवास हैं, पर स्वंय को और अपनी जाति को अन्य असवर्णो से उँचा समझता हैं। बालगोबिन मोची है, छोटी जाति का है, उसे गाँव में रहते हुए अपनी नीची जाति में पैदा होने का बडा दुःख हैं। इस तरह गाँव के भीतर की मानसिकता का चित्रण बडी सुझबुझ के साथ उपन्यासकारने किया है 'रेणूजी' ने गाँव को बडी निकटता से देखा, भोगा है। अतः स्वातंत्र्योत्तर ग्राम जीवन के बदलते संदर्भो में व्यक्तिमन को उत्तरोत्तर घेरती भ्रष्ट राजनीतिक गुटबंदी, आर्थिक विपन्नताएं रोजी रोटी के अनुत्तरित प्रश्न, सरकारी तंत्र की स्वार्थी मनोवृत्ति, टूटते बनते हुए नाते रिश्तों की दुनिया, आम आदमी की व्यथा कथा तथा इन सबके बीच छटपटाते मूल्य बोध का गहरा अहसास इस धरती की कृति से होता है।'' उपन्यासकार ने ग्रामीण जनजीवन का सूक्ष्म चित्रण करके वहॉ के समस्याओ को सामने रखने का प्रयास यह किया है। गाँव का चित्रण वहॉ का वातावरण का चित्रण करते करते लोकजीवन का भी चित्रण किया गया है। दलित जीवन का भी चित्रण सहजता से किया है। लूत्तो अपने आप को असवर्णो से उँचा समझता है ''छोटी जाति के लोग तो अपनी जगह ठीक है। आजकल हरिजन भी कहलाने लगे हैं। लेकिन खवास न जलो न थलो।''... खवास सुरूप

होते है। सवर्णो के सत्संग, संस्कार तथा अंतर्मिलन के फलस्वरूप लूत्तो क्या करे अकेले, जातिके लोगो की हालत तो है बिलकूल कूत्ते की इम की तरह। सीधी हो तब तो। खाई हुई जीभ बुढों की पनिया जाती है।''

ग्रामीण वातावरण के भीतर गॉव मे जाति से ही मनुष्य की पहचान होती हैं, वह चाहे कैसा भी हो जाति से श्रेष्ठ तथा कनिष्ठ समझा जाता है। ''बालगोबिन की ऐसी बातें सुनकर बडा गुस्सा आता हैं, अपनी जाति पर। अपने पर भी। वह क्यों चमार होकर जन्मा इस मिरतूभवन में?'' रेणूजी ने अपने उपन्यास में गाँव का सचित्र हमारे सामने खडा किया है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है, कि ग्रामीण परिवेश में जाति महत्वपूर्ण होती है, दलित जीवन बडा पीडादायक दिखाई देता है। 'पत्थर के आँसू' यह उपन्यास यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का है, इस उपन्यास में निम्न जाति ढोली तथा उच्चवर्ग ठाकूर जीतसिंह यह किस्तुरी को जब देखता है, तो वह अपने महले में उसे पाना चाहता है, छोटी जातियों की स्त्रियों का सुंदर होना एक पाप माना जाता है, क्योंकि ठाकूर जैसे राक्षस उसे पाना चाहते है, सूरज के उजाले में जिसको छूना पाप समझा जाता है, वही अछुत स्त्री रात के अंधेरे में सांमतो द्वारा उसे उटा दिया जाता है, महलो में रखा जाता है। ठाकूर अजीतसिंह सांमती पात्र है, वह अपने में किले पसंद आई किसी भी निम्नजाति के स्त्री को भगाता है, ठाकूर द्वारा गाँव के भीतर आजतक अनेक अत्याचार हो गए थे, किंन्तु गरीब होने के कारण निम्न जाति के होने के कारण सब कुछ रहते है, किंन्तु किसी से कुछ नही कहते है, चूपचाप अपना जीवन जीते है। ठाकूर द्वारा किस्तुरी को विलास के लिए बुलाने पर उसके द्वारा इंकार करने पर केसर कहती है - ''सीधी सीधी चली जा वरना ये लोग तूझे जबदस्ती उठा ले जाएंगे।'' लेकिन ठाकूर जबदस्ती से किस्तुरी को महल में ले आता है, किंन्तु किस्तुरी अपना शील का हरण होने से पहले महल से कुदकर आत्महत्या कर लेती है। अपनी बहन की मृत्यु को सुनकर प्रतिशोध की अग्नि में भाई का हृदय भर जाता है, और वह ठाकूर को ही खत्म करने के लिए विवश हो जाता है- ''मैं बचपन से जानता हूँ कि इस किले में कितनी माँ बहिनों की इज्जत लूटी गई है। कितनी निर्दोष लडकियों को विवश होकर इस किले से कूदना पडा है। यह किला किला नहीं, तुम जैसे ऐय्याश मुर्दो का क्रिडास्थल है और हमारा वधस्थल मैं तूम जैसे ऐय्याश मूर्दो को धरती से उठा दूँगा। इन किलों को विरान कर दूँगा।।'' और सचमूच वह एक दिन पूरे ठाकूर के खानदान के साथ ठाकूर मनचाहा व्यवहार करते

हैं, यह तो मन बहलाने के लिए काम आते हैं, और बाद में उन्हे खत्म किया जाता हैं। 'सिधी सच्ची बाते' उपन्यास भगवतीचरन वर्माजी का है, इस उपन्यास के माध्यम से वे कहना चाहते हैं, दलित वर्ग का चित्रण करते हुए व्यक्ति विशेष को लेकर नही, सामाजिक वैषम्य की और संकेत करने की जरूरत हैं। यह उपन्यास हमारे सामने आता हैं, समाज के भीतर वर्णव्यवस्था बनी हैं, ब्राह्मण अपने को देवता कहते है, क्षत्रिय अपने को राजा कहते है, बनिया यह अपने को धनपति कहते है, शुद्र यह सेवक है। क्योंकि शुद्र यह निर्धन है, इसलिए वह जो चाह काम करता है, समाज के भितर शुद्रों के भितर भी उपजातियाँ है, अछुत, धानूक, चमार पासी। इनसे भी नीचे है - चांडाल। इन लोंगो को छुआ तक नही जाता है। यहाँ रंगभेद नही है बल्कि यहॉ जाति भेद है जाति के आधार पर उच्च और नीच कहलाता हैं। समाज के भितर मिलने के बाद उस व्यक्ति की जाति यह पुछी जाती है, और बाद में उसके साथ व्यवहार यह होता रहता है, जगतप्रकाश के यह पुछने पर कि आप बंगाली है? इस पर मिस मंडल का उत्तर आता हैं - ''हां, बंगाली अछुत। लेकिन अब अछूत नही हूँ, क्योंकि मैं ईसाई बन गई हूँ।'' जगत प्रकाश के यह पुछने पर आप ईसाई बनी है या आपके पिताजी? मिस मंडल कहती हैं - ''मैं ईसाई बनी हुँ, मेरे पिता अब भी हिंदु हैं। चटगांव में वकालत करते हैं। उनके पास अच्छी संपत्ती है और वह बहूत बडे नेता हैं। बंगाल की मिनिस्ट्री में वे किसी न किसी दिन आ जाएंगे। उन्होंने मुझे ईसाई बनने से बहुत रोका लेकिन मैं नही मानी। जिस धर्म में मनुष्य का अपमान हो, मनुष्य लाँछित समझा जाए वह धर्म दूषित है।'' उपन्यासकार यहॉ जाति व्यवस्था को फटकारने का प्रयास करता हैं समाज की विषमता को उजागर करता हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता हैं, कि हिंन्दुओं में धर्मान्तर होने का मूल कारण जाति व्यवस्था और छुआछुत हैं, यही सीधा सच्ची बाते हैं।

'अलग अलग वैतरणी' शिवप्रसाद सिंह का पहला और समर्थ उपन्यास हैं, इस में करैता नाम के एक गाँव की कथा है, यह गाव बिहार तथा उत्तरप्रदेश की सीमा के पास है, जो की उपेक्षीत हैं। गाँव के भीतर दलित परिवार के साथ चौधरी का रवैया यह हमेशा तेढी ऑखे से होता है, थोडी सी गलती दलित समाज करता है, तो उसे मारा, पिटा जाता है। उसे बेइज्जत किया जाता हैं। दलित समाज की स्त्रियों के साथ चौधरी भगत के अवैध संबध है, इस तरह से दलितो की जीवन की दशा यह देखी जाती हैं एक तो भुख तथा दुसरी और परिवार के साथ अन्याय को

सहना पडता है। कभी वह प्रतिकार करते है, तो उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है, ठाकूर चमारों के किसी कार्य पर विरोधी संघर्ष करे तो आंतक और हिंसा से उसे दबाया जाता है, ठकूराने से पचीसों लाठिया निकल पडी। तालाब, सिवान, रास्ते, सभी तो ठाकूर के ही थे। इनका उपयोग करने का चमारों को क्या हक भला? चमार और चमारिनों पर बेहद मार पडी। तालाब पर नहाती औरतों के झोंटे पकड कर खिंचा गया। खेत साग पात, साग-सालन लाती चमार लडकियों को दौडाकर बेइज्जत किया गया। लाढ-डांड पर चलते चमारों के बदन लहू-लूहान हो गए। देवकिसून का सिर फट गया।'' दलित समाज के साथ आर्थिक शोषण, अत्याचार, सामाजिक दलन, अमानविय नीति बिहार के दलित वर्ग के साथ यह होता है। यहॉ यह भी दिखाया गया है, कि समय के साथ, दलित वर्ग के भीतर एक प्रकार की चेतना भी दिखाई देती है, सदियों से दलित समाज सबकुछ सहकर अपना जीवन जीता है, स्वंतत्रता के पूर्व दलित और स्वंतत्रता के बाद का दलित में काफी बदलाव यह आता हुआ दिखाई देता है। दलित वर्ग में आई चेतना के कारण करैता गाँव का ठाकूर जैपालसिंह करैता की भूमि पर कभी भी पाँव नही रखेगा क्योंकि अब कोई आसामी उन्हें जूहार करनें नही आता, ठाकूरों के लडकों को देखकर अब सत्तर वर्ष का बुढा भी सलाम नही करता और न औरतो को देखकर चबुतरे की चारपाई से उठकर खानदानी लिहाजा दिखाता था। जैपालसिंह की जिंदगी ज्यादा तर गाँव के भितर झुके माथे और झुकी आंखो देखकर बीते थे। उन्हे नीच जाति वालों को तने-सीधे देखने का ताव न था। उच्चवर्ग की सेवा करना दलितो का काम है, ऐसी मानसिकता बन गई थी. एक दलित पात्र दुक्खन चमार की जैपालसिंह के घर में बेगार करते करते पीढियाँ बीत गई। कभी भी काम करते समय दिन देखा ना रात देखी बस काम और सेवा ही करते थे। किंन्तु एक दिन जरा सी गलती हो जाने पर जैपालसिंह के लडके बुझारथ सिंह ने पाँव पर कस कस लाढी मार दी और टाँग तोड दी। इस पर उसकी औरत कहती हैं - ''और करो मर- मर कर बेगारी। जीव जाँगर लगाकर इन लोंगो का काम करो। तनिक कुछ कह दो, कहीं भुल चुक हो जाए तो मार के जान लेले।'' इस तरह से दलितो के साथ अमानवीय व्यवहार यह किया जाता था। निष्कर्ष रूप में यह कह सकते है, कि दलितो के साथ सदियों से अमानुष व्यवहार यह होता आ रहा है, उनके भीतर थोडा आत्मसम्मान दिखाई देता है, तो उन्हें आंतक से भयभीत किया जाता है। दलित वर्ग के दुःख दर्द संत्रास,

घुटन, पिडा, शोषन आदि को उजागर करने का सफल प्रयास किया गया हैं। बिगडते हुए मानवीय मूल्यों तथा मानवीय संवेदनाओं को एक धागे में पिरोंने की अनुठी छाप डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलती हैं।

'जल टूटता हुआ' उपन्यास के लेखक डॉ. रामदरश मिश्र है। इन्होंने आजादी के उपरांन्त भारत देश में आये ग्रामीण जीवन तथा राजनैतिकता के कारण निर्माण हुए भूचाल को अपने उपन्यास में व्यक्त किया हैं। स्वांतत्र्योत्तर काल में टूटते हुए जीवन-मूल्यों की पीडा को गहरे दर्द के साथ स्पष्ट किया हैं। उन्होंने समाज के भीतर आता परिवर्तन राजनैतिक दृष्टि से स्वार्थ के हेतू बदलते मानवीय मूल्यों को चित्रित किया है। गाँवों के भीतर जाति पाति भेदभाव का चित्र प्रस्तुत उपन्यास के भीतर दिखाई देता हैं। आजादी के बाद एक नया समाज देश के भीतर निर्माण हुआ हैं, जो सदियों से दलित वर्ग सब कुछ सहता चला आ रहा है, किंन्तु अब थोडा सा बोलने लगा है, इस परिवर्तन को भी उपन्यासकार ने अपनी संवेदनाओं से व्यक्त किया हैं। युग के बदलते हुए तेवर यहॉ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उपन्यास की मूल कथा तिवारीपुर गाँव के जमींदार महीपसिंह, सतीश, अमलेशजी, दीनदयाल, मास्टर जुग्गन, धनपाल, महावीर आदि उच्च वर्ग के लोंगो के आसपास बुनी हुई है। गाँव के भीतर जमीदार और कष्ट करनेवाला इस तरह की विषमता यह दिखाई देती है, महीपसिंह ने बंजर जमीन का एक टुकडा जगपतिया चमार को बँधुवा मजदूर बना लिया है। वह तो उनके खेतो में काम करता ही है साथ ही साथ पूरा परिवार भी काम करता रहता है, तब भी उनको दो जून का खाना नसीब नही होता। बहुत कष्ट से मन को मारकर वह अपना जीवन यह जीते है। एक दिन उसका बेटा रमपतिया शहर चला जाता है। रमपतिया को शहर में नौकरी यह मिल जाती है, अच्छी खासी तनख्वा उसे मिलती है, जो खर्च करने के बाद पैसा बचता है, उसे भेज देता है, परिणामतः इस परिवार की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार आ जाता हैं। इधर महीपसिंह के खेत खलियान के काम वैसे ही रह जाते है, अतः महिपतसिंह को घुस्सा आता हैं, जगपतिया यह काम पर नही आ रहा है, तो महीपसिंह आगबबूला होते है। और जगपतिया से गाली गलोच पर उत्तर आते है, तब जगपतिया कहता है बबुआ गाली मत दीजिए। रमपतिया नौकरी पर गया है तो क्या हो गया? नौकरी नही करेंगे तो हम लोग खायेंगे क्या? जगपतिया चमार होकर भी वह महिपसिंह को शब्दों में सुनाती हैं इसका एक ही कारण यह है दलितो की आर्थिक स्थिति में अब सुधार आए है तो अब वह अन्याय के खिलाफ

बोलने का साहस करता हैं। दलित समाज अब कामकाज के तलाश में शहरों की ओर जा रहे है, छोटे मोटे काम करने पर आर्थिक स्थिति में भी सुधार यह आ रहा हैं। इसके कारण भी उनका उत्साह बढता है और उनमें नई चेतना यह अंकुरित होती हैं। आजादी के बाद दलितों का उत्साह यह बढेते हुए दिखाई देता है। उनका रहन सहन खानपान क भीतर भी परिवर्तन आता हुआ दिखाई देता है। दलितों की मजबुरी का फायदा उँचा वर्ग हमेशा उठाता था, तथा दलित वर्ग की स्त्रियों के साथ उनके शारीरिक संबध समय समय पर रहते थे, किंन्तु दलित वर्ग जानबुझकर इस वारदात को नजरअंदाज करता था। क्योंकि वह कुछ भी उँचवर्ग के खिलाफ कर नही सकता था और दिन गुजरते जाते थे, तो उँच वर्ग दलितों को परेशान करता था, वहाँ दुसरी ओर कही कही ऐसा भी होता है, सवर्ण स्त्रियों या लडकियाँ अपनी यौन लिप्सा की तृप्ति के लिए दलित युवको को फॉसती है किंन्तु यहॉ देखने को मिलता है, दलित वर्ग का कोई लडका सवर्ण कन्याओं के साथ पकडा जाता है, तो उसे बुरी तरह से मारा पिटा जाता है, कभी कभी तो उसकी हत्या भी की जाती है, क्योंकि आगे कोई भी दलितवर्ग का युवक ऐसी हरकत नही कर सकेगा, लंवगी का भाई हंसिया एक ब्राह्मण कन्या पार्वती के साथ प्रेम करते हुए पकडा जाता है, यह खबर जब गाँववालों को पता चलती है, तो सभी लोग उसकी पिटाई करते है, वे लोग तो उसको जान से मारना चाहते थे, पंरन्तू जब लंवगी बीच में कुद पडती है और जोर जोर से चिल्लाकर कहती है,'' क्या हुआ अगर मेरे भाई ने एक बामन की लडकी से भला-बुरा किया? चमार का खून-खून नही है? बामन का खून ही खून है? हमारी कोई इज्जत नही होती क्या, बामनों की ही इज्जत होती है?.... जब चमरोठी ही तमाम लडकिंयों पर ये बाबा लोग हाथ साफ करते है तो कोई परलय नही आता कोई चमार बामन की लडकी को छू ले तो परलय आ जाती हैं। ... हरिजनों के नेता, मैं तुमसे फरियाद करती हूँ कि वोट लेने वाले नेताओं से जाकर कहो कि हमारा खून खून नही हैं हमारी इज्जत इज्जत नही हैं, तो हमारा वोट ही वोट क्यों है?''

लंवगी का यह कथन हरिजनों का जो यौन-शोषन और राजनीतिक शोषण हो रहा है उसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। 'जल टूटता हुआ' इस उपन्यास में उपन्यासकार ने अपने गाँव की धरती से जुडकर भोगे हुए यथार्थ की विभिन्न संगति, विसंगतियों को, आपसी संबधो के तनाव और विघटन को मूल्यों तथा विश्वासों के बनते बिगडते रूप-स्वरूपो को, तथा जीवन के आंतरिक अभावों की क्रुर चुनोतियों

को आधुनिक संदर्भो के साथ शब्दबद्ध किया हैं। उपन्यास में दलितो का जीवन तो भेड बकरीयों की तरह हैं, बदमी नामक एक दलित नारी की कथा-व्यथा को भी मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। जब बाढ आती हैं तब बदमी उसमें बहने लगती है। दलित जाति की होने कारण कोई उसे बचाने नही आता। लोंगो को अपने अपने जानवरों की चिंता है, पर बदमी की ओर कोई ध्यान नहि देता लेकिन एक कुंजू ब्राह्मण उसे बचाता हैं। डॉ. ज्ञानचंद गुप्त ने जल टूटता हुआ के संदर्भ में लिखा हैं कि ''इस उपन्यास में दलित वर्ग का चित्रण शोषित वर्ग के रूप में हुआ हैं जो संपन्न और अपने आपको सवर्ण कहने वाले ब्राह्मणो व ठाकूरों की हलवाही करता हैं। उनका जीवन बन्धुआ श्रमजीविओं जैसा है। उच्चवर्ग के लोग उन्हें सदा के लिए हलवाहे बनाए रखने के लिए हर प्रकार का छल कपट करते है तथा अन्याय व आंतक का भी सहारा लेते हैं। स्वंतत्र भारत में प्रजातंत्र के श्रम पर उनका राजनीतिक शोषण होता हैं। सर्वहारा वर्ग के प्रति लेखक की सहृदयता सर्वत्र देखने को मिलती है।'' तात्पर्य यह हैं कि उपन्यास में बिहार के एक क्षेत्र विशेष कर भाटपूर और तिवारीपूर गाँव के जनजीवन के विविध रूंपो को चित्रित किया गया हैं इस उपन्यास में दलितो के जीवन की त्रासदी को भी प्रंसग प्रंसग पर चित्रित किया है। गाँव का टूटना, मानवीय मूल्यों का टूटना, सच का टूटना यह सब शोषक और शोषितो के वर्ग संघर्ष के कारण यह टूटन घूटन पैदा हैं।

रूप में कहाँ जा सकता है कि डॉ. रामदरश मिथ 'जल टूटता हुआ' उपन्यास सामाजिक आर्थिक, जातिय द्वेष और शोषन की प्रक्रिया का एक वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता हैं। साथ ही यह उपन्यास उन सभी आधारों को जोडने में सफल हुआ हैं। भगवतीचरण वर्माजी का उपन्यास 'सबहि नचावत राम गोसाई' इसमें दलित जाति बेडनी की भमरी हैं, जो सुंदर स्त्री हैं, इलाहाबाद और रींवा इस क्षेत्रों में डाकुओं का बसेरा हैं, इस बीच पुलिस और डाकुओं की मूठभेड मे नाहरसिंह को गोली लगती हैं, वह बेहोश हो जाता हैं तो भमरी उसकी सेवा करके प्राण बचाती हैं, वह उसे अपनी पत्नी बनाता है, इसी भमरी की कोख से जबरसिंह का जन्म होता हैं, नाहरसिंह की मृत्यु हो जाने पर वह पनाह खोजती है, गांव के आश्रम में साधु महाराज के पास रहती तो महाराज से अवैध संबध बनते है। परिणामस्वरूप नाहरसिंह के साथीयों ने भमरी को नदी में डूबोकर मार डाला। इस प्रकार यह दलित पात्री भमरी उपन्यासकार के हाथों में कटपुतली बनकर कथा को आगे बढा गई, यह

सीमित आकार में सुगठित कथा रचना हैं।

साँतवे दशक के उपव्यासों में दलित जीवन

'सूखता हुआ तालाब' डॉ. रामदरश मिश्र का उपन्यास में दलित जीवन की विडबनाओं को प्रस्तुत किया हैं। यहाँ उच्चवर्ग शिवलाल, दयाल तथा धमेंद्र यह निम्नवर्ग के चमारिनों से शारीरिक संबध रखते हैं और दुसरी और छुआ-छुत का दंभ भी पालते है। पानी भरने का प्रंसग मूरतिया कुएँ से पानी भरता हैं, पास ही शिवलाल का बेटा रामलाल भी पानी भर रहा हैं, लेकिन पानी का छिंटा मूरतिया से रामलाल के घडे पर गिर जाता है, इस पर रामलाल यह मूरतिया को पिटता हैं, रोते हुए मूरतिया अपने मालिक मोतीलाल के पास जाता हैं जो हरिजनों का नेता हैं, पंरन्तु अपने नौकर के लिए वे शिवलाल से शत्रुता नही लेते यहाँ यह दिखाई देता हैं, कि मोतीलाल सिर्फ दिखाने और अपने स्वार्थ के लिए दलितो का नेता बनता हैं, वास्तविकता यह है कि उसे कुछ भी लेना देना नही हैं। यहॉ दरिद्रता के कारण निम्नजातियों की स्त्रियों का यौन शोषण होता हैं। उपन्यास में देवप्रकाश एक ऐसा पात्र हैं जो सत्य, न्याय और विवेक उसके भितर हैं, उसमें अच्छे जीवन मूल्यों के प्रति लगाव हैं, चेनइया की बात पर वे सोचते हैं कि ब्राह्मणों की तथाकथित साध्वी लडकियों से बढकर तो यह छिनाल समझी जानेवाली हरिजन बालिका लाख गुना अच्छी हैं जो गर्भ गिरवाती हैं न उस के नाजायज बाप का नाम देती हैं। चेनइया के साथ जिन्होंने अवैध संबध रखे हैं वे लोग चाहते हैं कि चेनइया बच्चे को गिरा दे। चेनइया देवप्रकाश से कहती है, ''दयाल बाबु रोज हमें धमकी देते रहे है कि साली नाम बताया तो थाने में बद करवाकर तेरी ऐसी की तैसी करवा दूगाँ पेट में जो झोरी लटकावे घूम रही हैं उसे ही खत्म कर नहीं तो तुझे भी खत्म करवा दिया जाए गा।'' इस तरह से दलितों के साथ जीवन से भी खेला जाता है, कब क्या और कैसे बितेगी यह दलित कभी भी नही जानता वह तो बस सूरज की पहली किरन से अंतिम किरन तक वह भयभीत होकर ही जीवन को जीता हैं। देवप्रकाश का भाई पडोसी गाँव में पासिन के साथ पकडा जाता हैं, एक दलित वर्ग का पात्र उनसे कहता हैं - ''भैया एक बात पुछू बूरा न मानिएगा। अवतार ठहरे विधूर। सूना हैं वे पत्नी के मरने के बाद फिर शादी करना चाहते थे, आपने रोक दिया। यदी अपनी सहज वासना तृप्ति के लिए उन्होंने पासिन से संबध रखा तो इसमें कौन-सा पहाड टूट पडा। इसमें कौनसी सात पुश्ते डूब गई। नैतिकता के ठेकेदार इन पट्टीदारों से पुछिए

कि छिप-छिप कर कौन-कौन क्या क्या करता है।'' इस प्रकार लेखक ने एक ओर दलित जातियों पर होनेवाले आत्याचारों का चित्रण किया हैं तो दुसरी और उच्चवर्ग की दोगली मानसिकता को भी सामने रखा हैं। उँची जाति के लोगो की खोखली नैतिकता और झूठे दंभ का पर्दाफाश किया हैं। 'धरती धन ना अपना' यह उपन्यास जगदीशचंद का दलित जीवन पर आधारीत उपन्यास है, इस में दलितो की सदियों से चली आयी गुलामी से उत्पन्न मानसिकता और हिन सामाजिक दृष्टि से ग्रस्त चेतना का अंकन हैं। उपन्यासकार उपन्यास के आमूख में ही लिखते हैं, ''मेरा यह उपन्यास मेरी किशोरावस्था की कुछ अविस्मरणीय स्मृतियों और उनके दमन के छिपी एक अदम वेदना की उपज हैं।... मैं यह सब देखकर बहुत ही उद्धिन्न होता था कि आर्थिक अभाव की चक्की में युग-युगान्तरों से पिस रहे हरिजन अब भी मध्यकालीन यातानाओं को भोग रहें हैं। जिस भूमि पर वे रहते हैं, जिस जमीन को वे जोतते हैं, यहॉ तक की जिन छप्परों में रहते है कुछ भी उनका नही हैं। इन्ही बातों को देखकर मेरे किशोर मन की वेदना सहसा अपने सभी बाँध तोडकर फूट निकली और मैंने उपेक्षित हरिजनों के जीवन का चित्रण करने का संकल्प कर लिया। प्रस्तुत उपन्यास लिखने का मूल प्रेरणा बिन्दु यही हैं।'' चमारों की जिंदगी को लेकर लिखा गया यह उपन्यास हैं।

उपन्यास का नायक काली उर्फ कालीदास हैं, वह जाति का चमार हैं, तथा शहर में मेहनत करके अपनी कमाई लेकर शहर से गाँव आ जाता हैं। काली का गाँव में रहकर एक नई मानसिकता निर्माण होती हैं, वह अपने और जाति के जीवन के सुधारना चाहता हैं, वह गाँव में देखता हैं, कि अच्छा जीवन सिर्फ गाँव में चौधरियों, व्यापारियों तथा अन्य सवर्णो को छोडकर किसी को भी जीने की सामान्य सुविधा यह प्राप्त नही हैं। चमार लोंगो का जीवन बहोत ही कठिन हैं, जानवरों की भाँति वह अपना जीवन यह जीते हैं। गाँव में उसका अपनी चाची के अलावा कोई भी नही हैं। माता पिता का देहांत हो जाने के बाद सिर्फ एक मात्र चाची ही काली का इन्तजार वह गाँव में करती हैं, गाँव में उसका बचपन का एक मिट्टी का घर हैं, वह उसे पक्का बनाना चाहता हैं, किंन्तू घर निर्माण करते समय उसे पत्ता चला की वह घर उसी का नही हैं. छज्जू शाह काली से कहते हैं - ''कालीदास जिस जमीन की तुम बात कर रहे हो वह जमीन तुम्हारी भी नही हैं। वह शामलाल (गांव के जमीदारों से साँझी जमीन) जमीन हैं। जब तक तू या मेरे वारिस इस गाँव में रहेगें

जमीन का टूकडा रिहायश के लिए तुम्हारा हैं। बाद में उसका मालिक गाँव होगा। वे तेरी मालकियत जमीन नही हैं, मौरुमी जमीन हैं।'' यह सब सुनकर वह हताश हो जाता हैं, तथा छज्जूशाह उसके चाचा के उधार पैसे भी माँगता हैं, किस तरह से चाचा और चाची का जीवन बीता होगा यह सब देखकर काली के मन में घृणा भाव यह निर्माण हो जाता हैं। काली अब गाँव में पक्का मकान बनाना ही चाहता हैं, इस की चर्चा चमादडी के साथ साथ पुरे गाँव में भी फैल जाती हैं। कालीदास एक पक्का मकान बना रहा हैं। काली अपनी परिवेश को बदलना चाहता हैं, किंन्तु गाँव के भितर काली एक चमार ही हैं, पक्का मकान बनाने पर काली की जाति में थोडाही परिवर्तन यह होनेवाला हैं। उसकी जाति थोडी ही बदलती हैं वह चमार ही रह जाती है, भट्टे पर इट लेते या मिस्त्री संतासिंह के पास था फिर छज्जूशाह के पास सभी उससे चमार कहकर छुआ-छुत का व्यवहार करते हैं, जो काली को बहुत चुभता है।''

काली गाँव आता हैं तो उसके मन में अरमान हैं, गाँव को अपना मानता हैं लेकिन गाँव में रहने के बाद गाँव के लोंगो के रंग यह देखने को मिलते हैं, जाहिर हैं कालि के पास कितना भी रुपया क्यों न हो लेकिन गाँव के भितर उसकी असली पहचान यह निम्न जाति की हैं, इस पर सन्तासिंह कहता हैं - ''सच्ची बात पुछो तो गाँव में कुत्तो और चमारों की पहचान रखना मुश्कील हैं। आते जाते रहते हैं न।'' काली शहर के वातावरण में रहने के कारण उसे छुवाछुत को वह भूल गया था, वहाँ तो जिस के पास पैसा हैं वही श्रेष्ठ या उच्च कहलाया जाता था, पैसेवाला ही सबसे उच्च है इसी मानसिकता को लेकर काली जब गाँव में आता हैं तो ठाकूर एवं उच्च वर्ग के लोंगो के खिलाप विद्रोह करता हैं। डॉ. बद्रीप्रसाद उपन्यास के संदर्भ में कहते हैं - ''प्रस्तुत कृति में जमींदारों और कृषि मजदुरो के वर्ग संघर्ष की तीव्रता विद्यमान हैं। अब गाँव की उपेक्षीत जनता जाग चुकी हैं। उन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान हो चुका हैं। गाँव के अछुतो ने यह सोंच रखा हैं कि अब चमार जाटों के रोष बर्दाश्त नही करेंगे। काली अछुत मजदूरों का एक ऐसा प्रतिनिधि हैं जो भावी मजदुरो में विरोध की असीम ताकद पैदा करता हैं। चमादडी के हरिजन मजदुरो ने बिना मजदुरी के काम न करने का निर्णय लिया हैं। उन लोंगो ने चौधरियों से साफ कहा कि बिना मजदूरी के काम नही करेंगे।'' आर्थिक एंव शारीरिक शोषन के खिलाप दलित वर्ग संघर्ष करता हैं। यह एक प्रकार से उनके भितर जागृति यह आ गई हैं।

भारत के गाव का हर नागरिक आज भी उत्पीडन शोषन अभाव अन्याय से रुबरू हो रहा हैं। उपन्यासकार ने आर्थिक विपन्नता द्वारा निम्नवर्गीय जीवन का यथार्थ उपन्यास में करके युग-युग से आर्थिक अभाव में कुढन भरी जिंदगी का साक्षात्कार किया है। इस उपन्यास का दुसरा प्रमुख पात्र हैं, डॉ. बिशनदास हैं, जो एक मध्यवर्गीय परिवार से हैं। डॉ. बिशनदास काली को वर्ग संघर्षो के कारणों से अवगत कराता हैं। इस वर्ग संघर्ष के सिंद्धान्त को समझाता हैं -'' जिस तरह बडी मछली छोटी मछली को खाती हैं उसी तरह बडा तबका छोटे तबके को 'एक्स प्लायट करता हैं यानी उसके मेहनत का फल उसे खाने नही देता बल्कि खुद खा जाता हैं। इसी से क्लास - स्ट्रगल वर्ग संघर्ष पैदा होता है।''

प्रस्तुत उपन्यास में काली अपने मार्ग में आए हर समस्या का समाधान को खोजता हैं, काली बराबर अन्याय, अत्याचार, और दमन के खिलाफ अपनी आवाज बुंदल करता रहता हैं। वह अच्छी जींदगी को जीना चाहता हैं, कष्ट करने के बाद अपने समाज को सूधारने का वह प्रयास करता है, उसके इस मिशन में डॉ. बिशनदास उसे सदा प्रेरणा देते हैं। ज्ञानों भी काली का साथ यह देती हैं।

निष्कर्ष - आज भी भारतीय गांवो में बसे दलित उपेक्षा लाचारी और उत्पीडन का शिकार हैं। निम्न वर्ग के प्रति उच्च वर्ग की अमानवीयता दलित जीवन को भस्म कर रही हैं। सवर्ण यह मानते हैं कि दलितों का कोई अस्तित्व ही नही हैं। 'मूर्दाघर' उपन्यास के लेखक जगदम्बा प्रसाद दीक्षित ने मुंबई महानगर की जीवन की त्रासदी का चित्रण इस उपन्यास में किया हैं, जो रेल्वे लाइनों, सडकों के किनारे, पूल के नीचे, गटरों, सीलन और सडाँध से भरी झोपडियों में दम तोडती हैं। यहाँ का जीवन बडा ही भयावह हैं, लेखक ने यहाँ की जिंदगी का यथार्थ परक चित्रण किया हैं, यहाँ भीख मॉगनेवाले, कोढी और अपाहिज जूठन पर पलनेवाले असहाय बच्चे चोर जुआरी आदि भी रहते हैं। इसलिए तो गोपाल राह लिखते हैं - यह दुनिया पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था की अनिवार्य देन हैं जो ठीक उसकी आलीशान जींदगी के नीचे बिलबिलाती रहती हैं और एक तरफ अपने अस्तित्व के लिए भीख चोरी, जूआ अस्मतफरोशी आदि का सहारा लेती हैं और दूसरी तरफ सभ्य समाज के पहरेदार पूलीस के अत्याचारों का शिकार बनती हैं।'' इस तरह से महानगरीय दलित जीवन की त्रासदी का चित्रण करनेवाला यह उपन्यास है निष्कर्ष - दलितो की स्थिति जो गाँव में दिखाई देती है, वही शहरो के भितर भी वह घूटन भरी जिंदगी यह हमारे

सामने आती हैं। 'एक टुकडा इतिहास' यह उपन्यास गोपाल उपाध्याय द्वारा लिखा हुआ उपन्यास जिसकी नायिका चनुली यह दलित जीवन की त्रासदी को देखकर एक ब्राह्मण युवक से प्रेम विवाह कर दलित जाति की नारकीय जीवन से मुक्तिपाती हैं, आगे संघर्ष क्षमता का परिचय देती हुई 'चंदा देवी' के रूप में रूपान्तरित होकर दलितोद्धार के लिए कार्य करती हैं, जीवन को बेहतर बनाने के लिए सवर्ण समाज को भी चुनेती देती है।

''नाच्यो बहुत गोपाल'' यह उपन्यास अमृतलाल नागरजी का हैं। यह उपन्यास समाज का उपेक्षीत वर्ग भंगी समाज को लेकर इसकी रचना की गई हैं। यह उपन्यास पूरे विश्वभर के भितर सिर्फ हमारे देस में ऐसा कार्य होता हैं, इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने निकृष्टमय कार्य को लेकर समाज व्यवस्थ को फटकारने का प्रयास किया गया हैं। भंगी समाज गाँव के भितर का मैला सिर पर बाल्टी उठाकर हर रोज गंदा ढोना और रात को जूठन से पेट भरना उनकी विवशता हैं। लेखक ने धर्म के आड में शोषण करनेवाले सवर्ण एंव उनके धर्मो की कटू आलोचना यह की हैं। गोपालराम कहते हैं कि ''दलित जीवन की चित्रण की दृष्टिसे अमृतलाल नागर का 'नाच्यो बहुत गोपाल' एक अत्यंत उल्लेखनीय उपन्यास है। जिसमें भंगी जीवन की नारकीय वास्तविकता का बहुत सटीक और संवेदणापूर्ण अंकन किया है। भंगी जाति की ऐतिहासिक वास्तविकता यह हैं कि युद्धों में विजयी जातियों ने पराजित जातियों को भंगी कर्म करने के लिए विवश किया था। इस विवशताजन्य नारकीय अनुभव के अंकन के लिए नागरजी ने निर्गुनिया की कथा कल्पित की है जो जन्मता ब्राह्मन कन्या होकर भी पारिवारिक सामाजिक स्थितियों के कारण एक भंगी युवक से प्रेम कर बैठती हैं और उसके संग भाग जाती हैं, उसके ब्राम्हण से भंगी बनने की प्रक्रिया-परिणति तथा सामाजिक शोषन और प्रताडना का जो, अत्यंत विभत्स, भयानक और अमानवीय सजीव वृत्त प्रस्तुत किया गया हैं।'' उपन्यासकार ने सदियों से शोषित मेहतर समाज का चित्रण निर्गुनिया के माध्यम से किया हैं। उपन्यास की नायिका निर्गुनिया ब्राम्हणी है जो मोहना नामक मेहतर के साथ दाम्पत्य बंधनों में बंध जाती हैं। उपन्यासकार ने उसके ब्राह्मण से भंगी बनने की प्रक्रिया तथा सामाजिक शोषण और प्रताडना का अत्यंत बीभत्स चित्रण किया हैं। विवाह के बाद मोहन की माँ उसे पाखाना साफ करने का आदेश देती हैं। अपने ब्राह्मणी संस्कार उसे धिक्कारते हैं। लेकिन कामनाओं की लालसा की भुखी निर्गुनियाँ को यह सब स्वीकार करना

पडता हैं। आक्रोश से भरी वह अपने जाति के बारे में शर्मा से कहती हैं – ''मेरी जात तो कामदेव की ज्वाला में भस्म हो गई शर्माजी। मैनें छोडी कहाँ? वह तो अपने आप छूट गई। आपके यहाँ उँची जातवाले पुरूष लोग तो साले दिन मे पचास पचास बार अपनी जात छोडते रहते हैं कही औरतों पर मुँह मारते है और कही उनकी गाढी कमाई के पैसो पर। जिसका धर्म ईमान कायम नही उसकी जात भला कैसे कायम रह सकती है? चाहे वह नाम का हिंन्दु हो या मुसलमान या क्रिस्चैन, कोई भी हो साला'' निर्गुणिया मेहतराणी बनने के बाद वह स्वाभिमानी है, वह कार्य करते समय चुनौतियों का स्वीकार करती हैं और उसे पूरा भी कहती हैं। मोहना उसे इस कार्य के प्रति मना भी करता हैं, तब वह स्वंय कहती है.'' देख रे मोहना! तेरे मोह में मेहतराणी तो बन गई हूँ, पर रंडी नही बनुँगी। रंडी किसी कीमत पर नही बनुँगी। मेहतरानी की अपनी मरजाद होती हैं।'' यहाँ बहुत बडा परिवर्तनवादी स्वर मुखरित हुआ हैं, गोपाल राय प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में अपनी राय देते हैं ''भंगी जीवन का इतने बडे पैमाने पर महाकाव्यात्मक वीजन के साथ चित्रण इसके पहले नही हुआ था। प्रायः इस प्रकार के प्रयासो में अनुभव की प्रामाणिकता का सवाल उठा करता हैं और नागरजी के प्रसंग में भी यह प्रश्न उठाया गया है। नागरजीने अपनी सीमाओं को स्वीकार करते हुए भी काव्यात्मक संवेदनशीलता के स्तर पर दलित जीवन से अपने तादात्म्यबोध का उल्लेख किया हैं। इसके लिए उन्होंने भंगी समाज के इतिहास का गंभीर अध्ययन तो किया ही हैं इस समाज के व्यक्तियों के इंटरव्यू लेने की कोशिश भी की हैं। यही कारण हैं कि नागरजी ने इस समाज का ऐसा प्रामाणिक और मार्मिक चित्रण किया हैं जो हिंदी उपन्यास में आज तक एक बेमिसाल है।'' निष्कर्ष रूप में यह कहॉ जाएगा उपन्यास में लेखक सामाजिक व्यवस्था जातिय समीकरन की पोल खोलते हुए नजर आते हैं। अपनी विद्रोहात्मक भावना से तीखे प्रहार करते हुए वे सामाजिकता के पक्षधर नजर आते हैं।

विमर्शात्मक उपन्यास लेखन में दलित जीवन की अभिव्यक्ति

हिंदी साहित्य में एक नया प्रवाह आता हुआ दिखाई देता हैं, आँठवे दशक से विमर्शात्मक लेखन की शुरुवात हो गई हैं। इस अवधि में देखा जाता हैं, कि अलग अलग साहित्य के प्रवाह निर्माण हुए और उसी को आधार लेकर रचनाँए यह लिखी जाने लगी थी। इसी दौर में हिंदी साहित्य में विमर्श के नये-नये क्षितिज खुले। उपन्यास विधा इससे अछुती कैसे रह सकती हैं। उपन्यास साहित्य में दलित निमर्श,

स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श इस प्रकार चिंतन के नये आयाम यह दिखाई देते हैं। साहित्य के भीतर कही कम अधिक मात्रा में यह विमर्श दिखाई देते थे, वह आँठवे दशक से ही सुक्ष्म और संवेदनाओं से भरी कृतियाँ यह लिखी जाने लगी, जीवन की व्यथा, गाथा और अभिशाप से भरी जींदगी के कटु यथार्थ को संवेदनशीलता से अभिव्यक्त किया हैं।

विमर्शात्मक उपन्यास लेखन की एक विशेषता यह है कि इस में स्वयं दलित वर्ग के लोंगो ने अपने भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। साथ ही अपनी अनुभूति को बडे प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया हैं। विमर्शात्मक उपन्यास लेखन में दलित वर्ग की अभिव्यक्ति इस मुख्य बिंदु को दशकों में विभाजित कर, उपन्यास में अभिव्यक्त दलित जीवन के त्रासद जीवन को विश्लेषित किया जा रहा हैं।

आठवे दशक के उपन्यासों में दलित जीवन

'हजार घोंडो का सवार' यह उपन्यास यादवेन्द्र शर्माजी का हैं। उन्होंने दलित जीवन की व्यथा को अभिव्यक्त किया हैं, उपन्यास का नायक गीधू जो जातिसे चमार है, पिता जीने जो धन कमाया था जिसके कारण वह खुशी से जीवन को जीते थे, सामान्य ही रहनसहन थी, आवश्यकता के अनुरूप ही सरल जीवन को जीते थे, किंन्तु पिता की मृत्यु के उपरान्त गाँव के भितर मृत्यु भोज के कारण न केवल उसके गाँठ की राशी समाप्त होती, बल्कि इस बीच वह कर्ज लिकर भी गुजारा करता हैं। ब्याज अधिक होने कारण उसे मेहनत मजदुरी करनी पडती हैं, और अपने परिवार का पेट यह पालना पडता हैं। दलित परिवार के पास जो कुछ पुंजी होती हैं, वह यदि समाप्त हो जाए तो जीना बहुत ही दुश्वार हो जाता हैं, लेखक ने अपनी ओर से कहा हैं इसमें बीकानेर के गहन गव्हरों में पडे शोषित सजीव चरित्रों व वस्तुओं को उजागर करने का मेरा ईमानदारी से प्रयास हैं। पेशेगत बनी हुई शोषित जातियों के उत्पीडन व शोषन की मेरी समझ में तटस्थ गाथा हैं। तटस्थ इस अर्थ में कि मैंने इस उपन्यास के पात्रों को अपनी बौद्धिकता से सवर्णो को दलितों का अच्छा खासा रहना अच्छा नही लगता इस लिए उसे उकसाते हैं, और गीधू की अवस्था यह दयनीय हो जाती हैं, राजस्थान के बीकानेर खंड की पेशे के आधार पर बनी दलित जातियों के शोषण और उत्पीडन को चित्रित करने का सफल प्रयास किया गया हैं।

उपन्यास का नायक दलित होने के कारण उस परिवेश का चित्रण यह किया

गया हैं, गरीबी का चित्रण हुआ हैं, दलित वर्ग का जीवन यह कितना भयावह हैं, जहॉ रहते हैं, उसके आसपास का परिवेश यह बहुत ही गंदा होता हैं, फिर भी यह लोग वही पर अपना जीवन जीते हैं, उपन्यास में चमारों की अशिक्षा, गरीबी, गंदगी, में जीवनयापन तथा सवर्णो द्वारा उत्पीडित किए जाने का विशद चित्रण हुआ हैं। दलित वर्ग के भीतर अनेक जातियों का भी वर्णन हुआ हैं, चमार, भंगी, आदि जातियों की दीन हीन दशा का भी चित्रण हुआ हैं, तथा दलित वर्ग पर सवर्णो द्वारा हुए अत्याचारों का भी वर्णन यह हुआ हैं। उच्चवर्ग यह दलितो को छूना, उनकी परछाई तथा उनके कपडे, यहॉ तक उनका कचरा भी अछुत तथा अपवित्र है, इनको सवर्ण बर्दास्त नही करते हैं भगीन सुनगडी को जमादार हमीद को डडो से इसलिए बुरी तरह से पिटता हैं कि उसने किसी ठाकूर के डेरे के पास कचरा डाल दिया था। कारण यह था कि उसकी टोकरी टूट गई थी। इस तरह दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार यह सवर्ण करते हैं। ''गुंदली चमारन को पंडित गजराज गेंडिये से केवल इसलिए बुरी तरह पीट देता हैं कि वह पीपल के गट्ट पर बैठ गई थी।'' दलित गाँव में रहेगा तो सवर्णो से दूर उसे रहना होगा पेड पौंधे इन सभी पर सिर्फ सवर्णो का ही अधिकार हैं, दलितो ने इनसब को छुना बैठना भी नही हैं, सिर्फ दूर से देखना हैं, इसी को लेकर भी उपन्यास में चित्रण हुआ है, राजस्थान के भीतर बिकानेर को जो क्षेत्र है, यहाँ दलितों के साथ जो चमार, धानक, सांसी, भंगी, और थोरी जैसी जातियों को उनके मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है। यह मरुभूमि होने के कारण यहाँ पानी की समस्या बहुत गंभीर हैं, तथा दलितों को यहाँ सार्वजनिक कुओं पर भी पानी भरने का कोई अधिकार नही हैं, पैसे देकर ही माँगकर पानी भरन पडता हैं, तथा गाँव के भीतर जोखिम के काम गंधे काम करने के लिए निम्न जातियों के लोग यह पैसों के खातिर करते हैं, किंन्तु इसमें जान चली भी गई तो यह दाद नही मांगते थे क्योंकि उनकी सुननेवाला कोई नही होता था। स्वंतत्रता प्राप्ती के बाद दलितों में अपने हक के लिए चेतना यह निर्माण होता हैं, सार्वजनिक कुंवा यह पूरे गाँव का हैं, दलित हुए तो क्या हुआ हम भी गाँव के ही हैं, इसलिह उस पानी पर हमारा भी हक हैं, इसके लिए दलित वर्ग प्रयत्न करता हैं, नेतृत्व करता है गीधू लेकिन वह भी शहीद होता हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में दलितो पर होनेवाले अन्याय को व्यक्त किया है, तथा राजनीति में आई गिरावट की और भी ध्यान खिंचा हैं, धर्म सत्ता में व्याप्त पाखंड

एंव भ्रष्टाचार का वर्णन भी इसके भीतर किया गया हैं। 'अभिशाप' यह उपन्यास डॉ. आरीगपुडि का है, इसमें उपन्यास का नायक यह पद्मनाभन स्वंय जाति से अछुत हैं, पंरन्तु वह बहुत ही मेहनती, परिश्रमी और मेधावी हैं, बहुत मेहनत करता हैं, लेकिन अपनी जाति के लोग उसकी कोई सहायता नही करते इसका उसे दुःख हैं, वह सोचता हैं, कि यह सब मैं कर रहा हूँ मेरे अकेले की मेहनत हैं, वह एक दिन आई.ए.एस. ऑफिसर बनता हैं, सब कुछ लाभ मिलने के बाद उसे ऐसा महसुस होता हैं कि यह सब मेरी अकेले की मेहनत है, मेरी जातिने कुछ भी सहायता नही की हैं, तब वह अपनी जाति और परिवार से कट जाता हैं। अपने इस अपराध बोध को छिपाने के लिए उसका मन एक तर्क गढ लेता हैं कि ''उनको मुझसे किसी मद्द की उम्मीद नही करनी चाहिए। किसी ने कभी मेरी मद्द नहीं की। मैं भला क्यों करूँ।'' दलित जीवन को जीने वाला व्यक्ति अपने आंरभिक काल में बहुत यातनाओं के साथ जीवन को जीता हैं, इसका उसके बडे होने पर यह सब ऊसे याद आता हैं। पद्मानभन निम्न जाति का होने के कारण वह ऑफिसर बन जाने के बाद भी वह ऐसे कार्य करता हैं, कि वह उच्च लगे जातिगत हीनभावना के कारण वह क्लब के मेम्बर बनते हैं, आगे जब समस्याएँ आती तो शराब और सूंदरी की ओर आकर्षित हो जाते हैं। जब उच्चवर्ग यह सबकुछ देखता हैं, तो उन्हें सहा नही जाता और एक दिन उसे ही एक घोटाले में फँसा देते हैं, और नौकरी पर आँच आती हैं।

निम्नजाति का व्यक्ति अफसर बन जाता हैं, तो सवर्णो को अच्छा नही लगता हैं, जन्म पर आधारीत जाति व्यवस्था, सरकारी तंत्र में भ्रष्टाचार समाज कल्याण की योजनाए कैसे चलाई जाती है, आदि पर उपन्यासकारने चिंतन के साथ लेखन यह किया हैं।

'महापात्र' यह उपन्यास विश्वेश्वर का हैं, इस के भीतर उपन्यासकार ने दलितो पर होनेवाले अत्याचारों का चित्रण किया हैं, दलित वर्ग को पिटा जाता हैं, झूठे मामले दर्ज किये जाते हैं, पुलिस तथा प्रशासन भी दलितो के साथ अमानवीय व्यवहार करता हैं, चाहे कुछ भी हो तो पहले निम्न जाति के लोंगो को फँसाया जाता हैं, डोम जाति की कमला, माँ फूलवली, पिता नीलमनी यह सब मेहनमत मजदुरी करके अपना जीवन यह जीते हैं, लेकिन मि. घोष के घर चोरी होती हैं, लेकिन शंका यह ली जाती हैं, नौकरानी कमला पर पुलिस मे रिपोर्ट लिखी जाती हैं, पुलिस परिवार के सभी सदस्या को पकडकर मारते हैं, कमला को छत के पंखे से लटका

दिया जाता हैं, जानवरों के जैसा सभी को पिटा जाता हैं, इस बीच रुक्मणी का अधुरा गर्भ भी गिर जाता हैं। उधर पुलिस इनकी झोपडीयों की तलाशी लेते हैं, और झोपडीयों को अस्तव्यस्त कर देते हैं, सामान इधर उधर फेंक देते हैं, तलाशी के नाम पर पुलिस का रवैया यह दलित के प्रति कैसा हैं। दलितों पर अन्याय होता हैं, लेकिन चार दिनों तक यह सब सूर्खियों में होता हैं, बाद में यही दलित नेता पैसे लेकर चूप हो जाते हैं। सभी लोग क्या हुआ ऐसा पुछकर दलितों के प्रति सहानुभूति निर्माण करते हैं, जिलाधीश तथा लोकसभा तक यह सब गुँज उठता हैं, सभी कुछ दिन तक उस पर चिंतन करते हैं, ढेर सारे उन्हे आश्वासन भी दिये जाते हैं, लेकिन कुछ भी पूरा नही होता बल्कि हवा में मनुष्य के स्थान पर 'महापात्र' बन जाते हैं।

आज दलितो के जीवन पीडामय बन गया हैं, उन पर झूठे अपराधों को लगाया जाता हैं, पुलिस और प्रशासन भी सिर्फ दिखाने के लिए काम करते हैं, जो न्याय इन्हे मिलना चाहिए वह आज तक नही मिला हैं, बल्की दुःखो को कहते कहते यह एक सिर्फ पात्र बन गए है। जो नाटक में वही बार बार संवादों को दोहराया जाता है। 'मकान दर मकान' उपन्यास बाला दूबे का इसमें सवर्ण–असवर्ण प्रश्न को लेकर लिखा गया हैं, एक तो निम्नजाति के भितर भी उपजातियों के कारण बेटी व्यवहार नही होता हैं, इनके भी भितर हल्का और भारी का भेदभाव यह दिखाई देता हैं, यहॉ 'समेरा' भंगी की लडकी किश्नो और गयासिया चमार के लडके में प्रेम हो जाता हैं, वह विवाह करणा चाहते हैं, किंन्तु निम्न जाति के होने के बावजुद भी उन के भिन्न जातियों के कारण विवाह को अनुमति यह नही मिल पाती हैं, फिर दोंनो भी एक नया कदम उठाते हैं, दोंनो ईसाई बन जाते हैं। अब वे भंगी रहे न चमार। शहर मे बसने के कारण वहाँ उधर निर्वाह के लिए कामकाज देखते हैं, झाडू–पोंछा का काम मिल जाता हैं शहर में उनकी इज्जत होने लगती हैं, पहले जाति के नाम से कई बार अपमानीत होना पडा था, किंन्तु अब धर्म परिवर्तन करने के बाद उन्हे सम्मान की जिंदगी मिल जाती हैं। दलित जीवन की सबसे ज्यादा त्रासदी यह नारी की दिखाई देती हैं, उच्चवर्ग दलित नारीयों का मजबुरी का फायदा उठाकर शारीरिक शोषन करते हैं। 'रतनगढ हाऊस' के राजा का प्रेम बिरजा नामक डोमिन से हो जाता हैं। राजा उसे अपने पास रखता हैं, किंन्तु बिरजा को राजा से गर्भ रहता हैं। बिरजा को मातृत्व का अहसास होता हैं, वह अपने पुत्र के भविष्य के प्रति सोचकर राजा के पुत्र के लिए अधिकार माँगती हैं, तो राजा कपट से उसे जल विहार के लिए ले

जाता हैं, और पानी में डुबाकर मार डालता हैं– ''आखिर थी तो डोमिनी। हरामजादी यह भी नही सोचती कि रानी माँ के हक के लिए कितनी बडी बात कह दी। रानी माँ हमारे खान दान की शोभा हैं। वह हमारी पगडी की कलगी हैं।''[७०] निष्कर्ष यहॉ दलितों का जीवन कैसा हैं, कही भी सुख उसे नही हैं, कब क्या और कैसे हो जाएगा यह भी कहा नही जाएगा सुख की तलाश में उसकी अवस्था मकान दर मकान हो गई हैं। 'यथा प्रस्तावित' उपन्यास गिरीराज किशोर द्वारा रचा गया हैं, इस में दलित वर्ग का प्रशासकीय कार्य तथा परिवेश के भीतर दलित जाति का होना उस के लिए अपमान हैं कार्यालय में निम्न जाति होने के कारण उसकी उपेक्षा ही की जाती है, तथा परिवेश मे रहने के कारण क्वार्टर में पडोसी उच्चवर्ग का होने के कारण अनेक अपमानों को पति पत्नी को सहना पडता हैं, इस त्रासदी का चित्रण इस उपन्यास में हुआ हैं। उपन्यास का नायक बालेसर हरिजन हैं, सरकारी नौकरी उसे मिल जाती हैं, लेकिन कार्यालयों के भीतर की लालफीताशाही, भ्रष्टाचार, षडयंत्र का शिकार वह हो जाता हैं, बालेसर का हरिजन होना उसके लिए शाप जैसा हैं, किसी न किसी प्रंसग में उसे ताना मिल ही जाता हैं, रोज रोज के अपमान, तिरस्कार और प्रताडनाओं को सहते सहते पागल हो जाता हैं, उसे सुख और शांती उसके नसीब नही हैं। समाज के भितर तो यह सहना ही पडता हैं, किंन्तु सरकारी कार्यालयों में जो घटित होता हैं, उसी का भी चित्रण किया हैं। दलित को कही भी चैन की जिंदगी नही हैं, जाति एक परछाई की तरह पीछे पीछे चली आती हैं, मुहल्ले में निम्न जाति के कारण चुपचाप अपने घर में बंद रहना पडता हैं।

बालेसर की घरवाली कहती, इन्ही कंमबक्तो के मारे दिन रात अंदर बंद रहते हैं। बाहर निकलते तक नही। सिगडी भी बाहर जलाते हैं तो ये इसी तरह चिल्लाते हैं और नहीं तो पास–पडोस वाले ही निकलकर गाली–गुफ्तार करने लगते हैं, जैसे इनकी सिगडी बिना धुए के जलती हो। हमारी सिगडी से निकला धुआँ इन्हें अपवित्तर लगता हैं। जात के पवित्र ऐसी–ऐसी बकते हैं कि सुनी नही जाती। फिर भी ये पवित्तर के पवित्तर और हम नीच और अपवित्तर दोंनो। देह धरे का दंड हैं सो भोग रहे हैं। भोंगेगे नही भागेंगे। हम भागेंगे तो ये बच्चे हमसे पहले भाग खडे होंगे। जीते जी न तो कुए खत्ती में गिरा जाए, न जात बदल कर बेजात हुआ जाए। दोंनो पती पत्नी को यह जीवन बहुत कठिन बितता है, वे क्वार्टर मे रहते है, तो पडोसी बालमुकुंद शर्मा उन्हे परेशान करता है, दोंनो के लिए एक टट्टीघर व गुसलखाना एक

था, लेकिन बालेसर तथा पत्नी उनकी सुविधाओं का ध्यान रखती थी। लेकिन शर्मा उच्चवर्ग का होने के कारण एक दिन सबक सिखाने के लिए शर्मा की पत्नी ने ईटों के टुकडों के द्वारा पाखाना बंद करवाया था और उसे बंद करने का आरोप बालेसर के परिवार पर लगाया तथा बालेसर की पत्नी को हाथ डालकर पाखाना साफ करने को विवश किया, मना करने पर बुरी तरह से पिटा था इस प्रसंग से पुरा परिवार घबरा जाता हैं, निम्न जाति का होने के कारण बार बार तिरस्कार यह सहना पडता था, लेकिन इन सबको स्वीकार भी करकर चलना हैं, बालेसर व्यवस्था की दोहरी चक्की में पिसता हैं। उन्हे ही अपराधी होना पडता हैं, इन सबसे सहता बालेसर अपने जीवन की त्रासदी को भी भोगता हैं, माँ बाप बिना दवाई के दम तोड देते हैं, भाई कँवारे रह जाते हैं, भुख गरीबी का जीवन उन्हे जिना पडता हैं, यह सिर्फ एक दलित होने की सजा को वह भोगते हैं। निष्कर्ष निम्नजाति के व्यक्ति को नौकरी मिल जाने के बाद उसके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता की वह एक तो सब छोडकर वह भाग जाए या तो उसे किसी घटना में फँसाया जाता हैं, और नौकरी से निकाल दिया जाता हैं, बालेसर को नौकरी से निकाल दिया जाता हैं तो बाल बच्चे दरदर की ठोकरे खाते हुए दिखाई देते हैं। यह दलित जीवन की त्रासदी का चित्रण हैं।

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' अब्दुल बिस्मिल्लाह की यह मौलीक रचना हैं। इसमें उन्होंने काशी के मुसलमान बुनकरों के जीवन संघर्ष को व्यक्त किया हैं, दुसरों के जिंदगी को खुशीहाल बनानेवाला यह समाज बहोत कठिन जिंदगी को ही जीता है, मेहनत करके भी उन्हे ठीक जीवन नही नसीब होता आर्थिक अभावग्रस्त भरा जीवन उनका दिखाई देता हैं, वे खुद उनके भीतर रहकर इस उपन्यास को उन्होंने अंजाम दिया हैं, ''कीमती से कीमती साडियाँ बुनकर देश विदेश के बाजारों में पहूँचाने वाला आम बुनकर खूद कैसे जींदगी जी रहा है। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास केवलमात्र बुनकरों की समस्याओं का संकलन नही हैं बल्कि बुनकर की वर्तमान सामाजिक आर्थिक दयनीय दशा के लिए जिम्मेदार पूंजीवादी समाज के दलाल चमचे शिरस्ता और कोठिवाल के घृणित शोषण को उजागर करनेवाला दस्तावेजी उपन्यास हैं। इन बुनकरो की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय हैं, बदहाली परतंत्रता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए बिस्मिल्लाह लिखते हैं - ''करघे का कर्ज अलग, कतान का कर्ज अलग, बनिये का कर्ज अलग, कपडे लत्ते का कर्ज अलग, बिमारी इमारी का कर्ज अलग... भला यह भी कोई जिन्दगी है।''

उपन्यास के संदर्भ में भारत भारद्वाज सही लिखते हैं कि ''दास कबीर की जन्नत से ओढकर रख दी चदरिया अध्यात्म और रहस्य के ताने बाने से बुनी गयी थी। लेकिन अब्दुल बिस्मिलाह के इस 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' को बनारस के गरीब साडी के पीछे से झोकता हैं आर्थिक अभावगस्त जुलाहों का शोषण करनेवाला गिरस्ता एंव कोटीवाल का घिनौना चेहरा। इस पूँजीवादी शोषण चक्र में तबाह होकर भी बुनकर संघर्ष का रास्ता नहीं छोडते। शोषण से मुक्ति संघर्ष की उनकी मशाल को उन्ही की दुसरी पिढी थाम लेती हैं। वे बार बार टूटते हैं लेकिन निराश नहीं होते, संघर्ष का रास्ता नहीं छोडते।'' निष्कर्ष इस तरह से हम देख सकते हैं, कि इस उपन्यास के भीतर बुनकर दलित का जीवन अभावगस्त हैं, वह जीने के लिए तरसते हैं, पूरा जीवन साडीयों को बुनने में जाता हैं, लेकिन उनके पास ठिक से कपडे भी नही हैं।

बीसवी सदी का अंतिम दशक उपन्यास में दलित

'छप्पर' – जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास दलित जीवन को लेकर लिखा गया पहला उपन्यास हैं। डॉ. एन. सिंह इस संबध में लिखते हैं, ''जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास छप्पर एक परिवर्तन कारी उपन्यास हैं, जिसे मैं हिंदी का पहला दलित उपन्यास मानता हूँ।'' इस उपन्यास को लेकर हिंदी साहित्य में नयी पहल हो गई थी की दलितों की पिडा को दलित ही समझ सकता हैं, इस दृष्टि से भी यह उपन्यास महत्वपूर्ण है, डॉ. मुन्ना तिवारी का मानना हैं कि – जयप्रकाश कर्दम का यह उपन्यास हिंदी का प्रथम दलित उपन्यास हैं। उपन्यास का नायक चंदन एक दलित किसान मजदूर परिवार से हैं, उच्च शिक्षा के लिए किये गये प्रयत्न की छटपटाहट की कहानी हैं। तो दुसरी और ग्रामीण क्षेत्र में रहनेवाले आम दलित समाज की आर्थिक दशा को भी अंकित करता हैं वह विषम परिस्थिती में रहकर अपना गुजारा करता हैं 'जो लोग दलित और दरिद्र हैं उनके पास रहते–सहते तथा एकाध पशु जो पालते हैं, उन सबके लिए कुल जमा गारा–मिट्टी की दीवारों पर घास–फुस के छप्पर या झोपडियाँ हैं। एक छत्री–दू छत्री। अधिक हुआ तो किसे के कच्चे कोटे पर बांस की खपच्ची या खपरैल की छत होती है या पशुओं के लिए छान झोपडी अलग। यही तक सीमित हैं उनकी साधन सम्पन्नता। घर के नाम पर सुक्खा के पास भी सिर छिपाने के लिए सिर्फ ऐसा ही एक छप्पर है।'' ऐसी अवस्था में सूक्खा अपना जीवन पूरा बिताया हैं, उसकी यह मानसिकता अब बन गई हैं, कि जो दिन मैंने देखे हैं, वह

मेरे बेटे के नसीब में ना हो वह बडा आदमी बनेगा उसके लिए वह अपने देखता हैं, वह किसान मजदूर होने के बावजूद भी बेटे चंदन को शहर भेजने का प्रंबध करता हैं। चंदन भी पढता हैं, किंन्तू इस बिच उसे काफी संघर्ष करना पडता हैं। मॉ पिताजी इसके लिए मेहनत मजदुरी करते हैं, न जाने कितने अत्याचारों को भी उन्होने सहा था। बेटा दारोगा या कलेक्टर बने। चंदन समाज के भितर परिवर्तन को चाहता है, सदियों से बद्धमूल संस्कारों, अंधविश्वासों एंव रुढियों का विरोध करता हैं। यहॉ तक की समाज के भीतर दयनीय दशा को देखकर मेहनत को सिखाता हैं, ईश्वर को नकारता हैं, ''तुम लोग जिस ईश्वर को मानते हो उसकी पुजा अर्चना करते हो, उसको प्रसन्न करने के लिए भेट चढाते हो तब भी तुम पर उसे दया नही आती है और वह तूमको पशुवत और नारकीय जीवन जीने को बाध्य करता है। तब तुम ही सोचो ऐसे ईश्वर को क्यो माना जाए।'' यहाँ चंदन पढ लिखकर उस के मन मस्तिष्क में आंबेडकर का नारा उनके विचार समाज के भीतर देना चाहता हैं, 'शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो'' की पृष्ठभूमि पर दलितो का उद्धार हो सकता हैं, सबसे महत्वपूर्ण हैं शिक्षा को हासिल करना इससे ही दलित वर्ग आगे बढ सकता हैं, सूक्खा अनपढ रमिया के विरोध में अपने बेटे चंदन के भविष्य को लेकर कहता हैं – ''चुप कर पगली कोई पेट से बडा बनकर नही आता। पढ लिखकर बडे बनते हैं सब क्या पता हमारा चंदन भी कल को कलकट्टर या दरोगा बन जाय।'' उपन्यास के भीतर लेखक ने यह दिखाया हैं, कि जो दलित समाज के भीतर पढा लिखा वर्ग हैं, वह अपने समाज के भीतर कुछ करे उन्हें मार्गदर्शन करने का कार्य करे। हमारा समाज न केवल सोया हुआ हैं, बल्कि वह जंजीरों में जकडा हुआ हैं। उसकी रक्षा और पहरेदारी करने के लिए किसी न किसी को तो अपनी नींद और आराम त्यागना ही पडेगा ना। यहॉ दलित वर्ग की जीवन की दक्षा और दिशा का चित्रण हैं। निष्कर्ष रूप में 'छप्पर' एक महत्वपूर्ण रचना हैं, जिसमें उपन्यासकार ने अपने भोगे हुए जीवनानुभवों को बडी शिद्दत के साथ पिरोया हैं। 'मोरी की ईट' मदन दीक्षित का उपन्यास मेहतर समाज की अभाव ग्रस्त जिन्दगी, शोषण और तिरस्कार भरी जिन्दगी का यथार्थ चित्रण किया हैं, मेहतर समाज गंदा दीन कार्य उसे करना पडता हैं, समाज की नजरे भी उसकी ओर देखने की हिन बन जाती है, मेहतर समाज की अभाव ग्रस्त जिन्दगी, शोषण और तिरस्कार भरी जिन्दगी का यथातथ्य चित्रण मिलता हैं। एक बार किसी निम्न जाति में जन्म लिया तो मरने के साथ ही वह जाति

उसके साथ चली जाती हैं, झरगदिया इस से छुटकारा पाने हेतु धर्म परिवर्तन करके ईसाई बन जाता हैं, परन्तु समाज के भितर वह सिर्फ मेहतर ही रहता हैं। निष्कर्ष रूप में यह देखा जाता हैं, कि मेहतर समाज की जिंदगी का वास्तविक सत्य का चित्रण यहॉ किया गया हैं, मनुष्य की जाति उस के मरने के बाद ही चली जाती हैं।

''जस तस भई सवेर' उपन्यास कथाकार सत्यप्रकाश का हैं इसमें दलित परंपरा की क्षेणी में आनेवाला अपने तरह का एक अलग उपन्यास हैं। इसमें आरक्षण और अन्धविश्वास को लेकर इसकी रचना हैं, संविधान ने आरक्षण तो दिया हैं, लेकिन दलित समाज हाशिए से बाहर था, अब वही समाज राजनीति मे आ रहा हैं, इस समस्या से जुडा हुआ, अंधविश्वास जैसी सामाजिक समस्या को लेकर लिखा गया हैं। प्रस्तुत उपन्यास में मंगल पहलवानके दो लडके हंसा और सखन के माध्यम से गांव के चौधरी देवीपाल पुरोहित हरसन्न भगत किस प्रकार दलितो का शोषण करते हैं, और दलित नारियाँ रामरती धूसिया और सन्नों को वासन का शिकार बनाते हैं और इनके भोलेपन का फायदा उठाते हैं, इनका शोषण करते हैं। इसका सफल चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ हैं। गाँव के भीतर दलित समाज अज्ञान के कारण सवर्ण जो भी कहते हैं, उन सभी को निम्नवर्ग स्वीकार करते हैं, उनकी भोली समज हैं, दलित समाज का इस तरह शोषण होता हैं, अंधविश्वास के कारण वे पुजा पाठ करके जो भी पास बचा पैसा हैं उसे पुजा पाठ में लगा देते हैं, और फिर किसी के यहॉ काम करते और कर्ज में ही दबे रहते और सवर्ण उनकी मजबुरी का फायदा उठाते रहता हैं। उपन्यासकार नायक सरवन के माध्यम से धर्माधता पर तीखा प्रहार किया हैं – ''अरे हंसा, मूर्ख मत बनो। दिमाग से काम लो पुजा–पाठ में कुछ नही रखा। इससे पुजारियों, भगतो और शोषको को छोडकर और किसी व्यक्ति को लाभ आज तक नही हुआ हैं और न कभी होगा।'' इस तरह से दलित समाज के भीतर जागृती लाने का प्रयास यहॉ हो रहा हैं, दलितो के साथ कैसा खिलवाड किया जाता हैं, इसी का भी चित्रण किया गया हैं, चौधरी देवीपाल सिंह गांव का ठाकूर हैं, तथा धर्म का ठेकेदार हरसन्न भगत (ब्राह्मण) दोंनो भी दलितो के अज्ञान का फायदा उठाते हैं, हंसा चमार पर जहारवीर देवता का कोप बताकर जात कार्य तथा बिरादरी भोज करवाता हैं। इसके लिए पैसे चौधरी के पास खेत रखकर पॉच हजार रुपए लेता हैं, सरवन उसे मना करता है लेकिन मानता नही उसे सवर्णो पर ही विश्वास हैं, अपनी बिरादरी पर विश्वास नही हैं, उनकी बातों में आकर हंसा की

पत्नी सुनहरी पर टोना–टोटका का कारण बताकर चौधरी और भगत दोंनो मिलकर बेहोश करके काया नष्ट के नाम पर बलात्कार करते हैं। इसी तरह वह रामरती और सन्नों के साथ भी बलात्कार करते हैं। चौधरी धन के बल पर तथा भगत कर्मकाण्डों की पूर्ति के लिए दलितों को राजी करता रहता हैं। दोंनो मिलके दलितों के जीवन के साथ खेलते है, तथा अपना स्वार्थ ही देखते हैं, महिलाओं को अपनी हवस का शिकार बनाना, उसके बच्चे की निर्मम हत्या करना आदि दिल दहलाने वाले प्रंसग हैं, यहॉ दलितों को एकजूट होने तथा सवर्ण के अत्याचारों का सामना करना एक चेतना दिखाई दैती हैं, सभी दलित एकत्र होकर चौधरी देवीलाल और पंडित हरसन्ना की पिटाई करते हैं, सरवन के माध्यम से दलितों के जीवन में उजीयाला लाने का प्रसाय किया हैं, इसीलिए तो डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी लिखते हैं ''दलित समाज हजारों साल की धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक गुलामी की जंजीरे तोडकर उससे बाहर आ रहा हैं और जैसे तैसे दलित समाज अँधेरे को चीरकर एक नयी सूबह से साक्षात्कार कर रहा हैं, यही उपन्यास की सबसे बडी उपलब्धि है।'' निष्कर्ष यह उपन्यास भविष्य के लिए सचेत करता हुआ भावी पीढियों के लिए सुरक्षित भविष्य के दायित्व को निभाता हुआ समाज में नया सबेरा निर्माण करना चाहता हैं। भारतीय संविधान की दृष्टि से सभी समान हैं। वर्ण, जाति, या लिंग भेद के आधार पर बडे–छोटे अमीर गरीब में कोई भेद नहीं हैं किंन्तु व्यवहारिक दृष्टिकोण से समाज में विभेद आज भी कायम हैं। इसे ही दूर करना उपन्यास का लक्ष्य हैं। 'मुक्तिपर्व' मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास हैं, जिसमें दलित परिवार की एक ऐसी कहानी हैं, जिसमें भारतीय समाज की विषमता से पूर्ण परिस्थितियों में अपने द्वंदो के साथ मुख्य पात्र अपने आत्मविश्वास के साथ जीना सीखते हैं। उपन्यास के केद्रीय पात्र बंसी और सुनीत हैं। जिनके इर्द–गिर्द उपन्यास की कथा घूमती रहती हैं। बंसी चमार जाती का है, वह नवाब अलीवर्दी खां के यहॉ मजदूर के रूप में काम करता हैं, और इसी रोजी रोटी से अपने परिवार की आजीविका चलाता हैं। बंन्सी स्वाभिमानी हैं, आत्मनिर्भर, मेहनती हैं उसे अपने मेहनत पर पूरा विश्वास हैं। बंशी पंरम्परागत सामन्तवादी ताकदों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए अपने पूत्र के सुनहरे भविष्य के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। वह अपने बच्चे को पढाना चाहता हैं, आंबेडकरी विचार उसके सामने हैं शिक्षित बनो वह अपने बेटे को एक अच्छी जिंदगी चाहता हैं, स्वंय तो इस दलदल में फँसा हैं, सदियों से सवर्ण दलितों पर अन्यय कर रहे हैं, उसकी जाति

के लोग गुलामी को भोगते आए थे। यह उत्पीडन की कहानी अकेले बंसी की नही है, बल्कि संपूर्ण दलित समाज की कहानी हैं, दलितों के मन पर जख्म देने का काम ब्राह्मण, जमींदार, और नवाबों ने किया हैं, वे इनके गुलाम बनकर रह गये थे। उन पर जब जाति का जुनून चढता तो वे आदमी को जानवर की पंक्ति में खडा कर देते। ऐसे समय पर दलित उनके लिए जानवरों से भी गए बीते हो जाते। वे तरह तरह से उन पर अपना गुस्सा हलका करते। गालियों तक ही सीमित न रहते, उन पर हाथ भी उठा देते। मारने-पिटने में उन्हें जरा भी हिचकिचाहट न होती थी। जानवरों की भाँति वे दलितों के जीवन के साथ खेलते थे। इस तरह का दलित जीवन दिखाई देता है, मोहनदास नैमिशराय देश की आजादी को दलितो की मुक्ति के सवाल से जोडकर शीर्षक को साथक बना दिया है। डॉ. आंबेडकर चाहते थे कि राजनीतिक आजादी के पहले दलितों को सामाजिक, आर्थिक शोषन से मुक्ति मिलनी चाहिए। क्योंकि अंग्रेजो के चले जाने के बाद भी सवर्ण दलितो के साथ गुलामों जैसा ही व्यवहार करते रहेगे। आजादी के बाद भी हुआ भी यही। आजादी के बाद भी पच्चास वर्षो में दलितों के लिए जो सामाजिक न्याय मिलना चाहिए था वह नही मिल पाया हैं। इसलिए तो उपन्यासकार आंरभ में ही यही सवाल करते हैं, और सोचने के लिए मजबूर कर देते है, आखिर यह आजादी किसकी है? कैसी हैं? झूठी हैं या अधुरी हैं ''हम मुक्तिपर्व किसे कहें? जब देश आजाद हुआ उसे या जब किसी जाति या कुछ जातियों को आजादी मिली उसे? मुक्ति से आखिर तात्पर्य क्या हैं? एक आदमी की मुक्ति या एक विशेष जाति की...'' यह उपन्यास दलितो की मुक्ती की पहल कर रहा हैं, पूरा उपन्यास आंबेडकरी विचारों से प्रभावित दिखाई देता हैं। उपन्यास के भीतर नायक बंसी को आंबेडकरी चेतना का वाहक बना दिया हैं, और वह कहता हैं। ''मुझे गुलाम बने रहने की आदत नहीं नवाब साहब वैसे भी देश अब आजाद हो गया हैं। अब ना कोई किसका गुलाम हैं और न कोई किसी का मालिक। सब बराबर है।'' दलित समाज सदियों से घूटन भरी जिंदगी को जीता है, अब दलितों को मुक्ति के लिए साझा लढाई की पेशकश की है। परम्परागत ढॉचे को बदलने के लिए लेखक ने बाबासाहब आंबेडकर के शिक्षा, संगठन और संघर्ष की महत्ता पर बल दिया है। निष्कर्ष - सदियों से अमानवीय व्यवस्था से दलित के शोषण, उत्पीडन के प्रति मुक्ति का द्वार खोलकर सामाजिक बदलाव के प्रति नई आशावादी नजर उत्पन्न करके उपन्यास को नई दिशा दी हैं।

हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास में बहमुखी विचरण पाया जाता हैं। हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन के चित्रण का भी एक लंबा इतिहास हैं। उपन्यास के पहले दौर में दलित जीवन का चित्रण देखने को नही मिलता किन्तु उसी के संकेत प्रसंग प्रसंग पर कम अधिक मात्रा में मिलते हैं, प्रेमचंद के आगमन से ही उपन्यास यथार्थ की भूमि में आ गया हैं। अतः समाज के भीतर का चित्र उपन्यासों में दिखाई देने लगा था, ग्रामीन परिवेश वहॉ का रहन सहने उनकी पिडा त्रासदी का व्यथा का चित्र प्रेमचंदजी के समय ही दिखाई देने लगा था। स्वांतत्र्योत्तर काल में दलित चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों की संख्या पर्याप्त मात्रा में पायी जाती हैं। पिछले पाँच दशकों में उपन्यासकारो ने बदलते परिवेश, दलित जीवन के विविध शोषण के स्वरूपों को अपने उपन्यासों में चित्रित किया हैं। यह देखने में आया हैं कि प्रेमचंद काल तथा प्रेमचन्दोत्तर काल (स्वाधीनता-पूर्व) में दलित जीवन का चित्रण प्रायः अदलित लेखको द्वारा हुआ हैं। हिंदी साहित्य में दलित लेखन का आधार को यदि देखा जाए तो मराठी में दलित साहित्य की जो भूमिका हैं, वैसी भूमिका हिंदी के भीतर नही दिखाई देती हैं। दोंनो भाषाओं की पृष्ठभूमि भिन्न रूप में दिखाई देती हैं, महाराष्ट्र में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का प्रभाव दलित साहित्य पर दिखाई देता हैं, वैसे ही हिंदी पर भी दिखाई देता हैं। प्रस्तुत उपन्यासों मे जहॉ एक और दलित जीवन की व्यथा-कथा निराशा, घुटन, त्रासदी हैं, वही दलित जातियों के भीतर एक क्रांतिकारी रूप भी दिखाई देता हैं। जो भविष्य की दिशाओं को आलोकित कर रहे हैं। दलित उपन्यासों के अध्ययन पर यह सबसे अधिक यातना यह दलित नारी की दिखाई देती हैं, एक ओर समाज की करूण गाथा, दुःख को भोगना है, तो दुसरी ओर सवर्ण के द्वारा उनके शरीर को नोंचा जाता हैं। दलितों को वर्णव्यवस्था के कारण दीन कार्य करना पडता हैं, दलित जाति के पिछडेपन के लिए अशिक्षा ही कारण हैं, शिक्षा के अभाव में विचार करने की ही क्षमता को वे भूल गए हैं, उन्हे कुछ भी नही सुझता और उच्चवर्गीय लोंगो ने उनका शोषन किया हैं। कामकाज की तलाम में कोसो दूर चले जाने के कारण वे अंसगठीत हैं, इसलिए वह उरते हैं, और चूपचाप सब सहते हैं। सदियों से उनके मन पर दलितपन की मानसिकता हैं, हम अछुत हैं की भावना कई बार उनकी प्रगति के मार्ग में बाधा बन जाती हैं। समाज के भितर पंरपरासे चली आयी अंधविश्वास तथा पुराने जर्जर रुढि-रिवाज भी दलित जीवन की प्रगति के मार्ग में बाधक सिद्ध हुए हैं।

उपसंहार

दलित वर्ग को आत्मबल और न्याय देने के लिए ३ अप्रैल १९२७ को डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकरजी ने एक मराठी पाक्षिक शुरू किया था जिसका नाम 'बहिष्कृत भारत' था। आज भी देश का दलित समाज बहिष्कृत जीवन जी रहा है, समाज में होने के बावजूद भी उसे मुख्य प्रवाह में नही लिया जाता। हाशिये के बाहर खडा दलित समाज आज आत्मसम्मान तथा बहिष्कृत जिंदगीसे मुक्ति पाने का संघर्ष एवं अपने आत्मसम्मान की पहचान की लडाई लड रहा है। इक्बाल ने कहा था 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।' तात्पर्य विश्व मे सबसे अच्छा हमारा देश है, यहाँ विविधता में एकता देखी जाती है लेकिन यह एकता झूठी है। दलित वर्ग छुवाछूत के कारण अछूत कहलाने लगा। उसे अनेक बंधनो में बाँध कर रखा गया। सार्वजनिक रूप में वह कुँवे का पानी नही पी सकता उस कुँवे पर सभी जानवर जा सकते है, लेकिन दलित नही जा सकता। उसके छूने से कुँवा अपवित्र हो जाएगा।

भारतीय समाज में परम्पराओ एंव रुढिवादिताओं का अधिपत्य रहने से अंदर से यह व्यवस्था अनेक जटिलताओं से घिर चुकी हैं। एक तरफ आर्थिक, सामाजिक विकास की चाह व दूसरी तरफ परम्परागत रुढिवादी मूल्य इस बीच दलित समाज अपना जीवन व्यापन कर रहा है। उपन्यासकारो ने समाज व्यवस्था में दलित वर्ग कैसे अपना जीवन जी रहा है, निम्नवर्ग की दुर्दशा को बडी पैनी दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है। दलित वर्ग को सम्मान का जीवन मिलने के लिए सभी ओर से प्रयास किए गए है। लेकिन ऊपरी तौर पर दलित वर्ग को सिर्फ एक वोट बँक के रूप में देखा गया है। उनकी मुक्ति के हेतु से किसी ने भी प्रयास नही किया है। परन्तु उपन्यासकारों ने दलित, शोषित, पिडीत वर्ग को केंद्र में रखकर अपना लेखन कार्य है। दलित वर्ग के उद्धार के लिए उन्होंने ऐतिहासिक तथा सामाजिक संदर्भ लेकर अपनी रचनाओं को लिखा है।

भारतीय समाज व्यवस्था का एक अंग दलित है, समाज से वह अलग होकर अपने अस्तित्व की तलाश कर रहा है। प्राचीन काल से रूढी परंपरा के कारण समाज का यह वर्ग बहिष्कृत जीवन जी रहा है। कभी धर्म के नाम पर तो कभी वर्ण के नाम पर इनका शोषण किया जाता है। साहित्य का केंद्र समाज होता है और समाज का केंद्र मानव होता है। मानव और उसके जीवन के विविध पक्षों का

चित्रण यहाँ हुआ है। युगीन परिस्थितियाँ, समाज के भीतर आए परिवर्तन, मनुष्य के जीवन का रहन सहन खान पान आचार विचार यातना घुटन, का चित्रण उपन्यासों में मिलता है। शहरी जीवन और ग्रामीण जीवन का चित्रण हुआ है। महानगर में झुग्गी झोपडी में उपेक्षीत, पीडित, अपमानित दलित जीवन का चित्रण उपन्यासकारों ने किया है।

साहित्य और समाज का संबध एक सिक्के के दो पहलू हैं। जिस प्रकार समाज उन्नत होगा तो साहित्य भी उसी प्रकार विकसित होगा, साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज का संपूर्ण दर्शन हमें साहित्य के भीतर दिखाई देता हैं। हिंदी उपन्यास में चित्रित दलित जीवन को, 'स्वंतत्रता' को केंद्र में रखकर उसका विश्लेषण तीन भागों में किया है १) स्वंतत्रता पूर्व उपन्यास में दलित वर्ग २) स्वांतत्र्योत्तर उपन्यासों में दलित वर्ग ३) विमर्शात्मक पूर्व उपन्यासों में दलित वर्ग की अभिव्यक्ति का विश्लेषण किया है। स्वंतत्रतापूर्व उपन्यासों का उद्देश मनोरजनात्मक पद्धती से था, पाठकों की कौतुहल वृत्ति बढाना और विस्मयजनक आंनद की सृष्टि करना यह मुख्य उद्देश यहाँ दिखाई देता हैं। प्रेमचंदजी को हिंदी उपन्यास सम्राट कहा जाता है, उन्होंने हिंदी उपन्यास को तिलस्मी और ऐयारी के सनसनीखेज तथा अविश्वसनीय वातावरण से बाहर निकालकर मानव जीवन की यथार्थ की पृष्ठभूमि पर लाकर रखा है। प्रेमचंद के उपन्यास के पात्र दलित जीवन से जूझने वाले है, दलितो का जीवन बडा ही कठिन दिखाई देता है। बेरोजगारी, अभाव, जातीय शोषण, अपमान, दयनीयता, असफलता, निराशा, स्त्री जीवन की व्यथा, मेहनतकश जनता का संघर्ष आदि अनेक जीवन संदर्भो का व्यापक प्रभावोत्पादक एवं मार्मिक अंकन प्रेमचंद ने किया है। 'गोदान' में किसान के साथ दलित, मजदूर वर्ग की त्रासदी का चित्रण किया गया है। दलित नारी सवर्ण के लिए केवल भोग की वस्तु है।

आजादी को लेकर जो सपने हमने देखे थे, उसका मोहभंग यहाँ हो गया है। प्राचीन पंरपरा और आधुनिक जीवन शैली का प्रभाव जनजीवन पर होता दिखाई देता हैं। एक ओर संपन्न समाज दिखाई दे रहा है तो दूसरी ओर अभावग्रस्त जीवन दिखाई देता है। महानगरीय जीवन में चकाचौंध दिखाई देती है, तो कहीं फूटपाथ पर सोते लोग, गरीब बेसहारा मजदूरों की झुग्गी-झोपडीयाँ हमारे सामने दिखाई देती हैं। आज भी भारतीय गाँवो में सिर्फ दलित उपेक्षा लाचारी और उत्पीडन का शिकार

है । बल्कि निम्नवर्ग के प्रति उच्च वर्ग की अमानवीयता दलित जीवन को भस्म कर रही है। सवर्ण यह मानते है कि दलितों का कोई अस्तित्व ही नही हैं। 'मुर्दाघर' उपन्यास के लेखक जगदम्बा प्रसाद दीक्षितने मुंबई महानगर की त्रासदी का चित्रण अपने उपन्यास में किया है। रेल्व लाइन, सडको के किनारे, पूलो के नीचे, गटरों के पास झोपडीयों में लोग अपना जीवन जी रहे है। महानगरीय दलित जीवन की त्रासदी यहाँ दिखाई देती हैं। साहित्यकार अपने अपने समय का चित्रण करता है। युगबोध सापेक्षता हमें दिखाई देती है। साठोत्तरी उपन्यासों में भारतीय परिदृश्य के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संदर्भो के अनुसार लेखन हुआ है, तथा इन उपन्यासों के माध्यम से प्रगतिशिल विचारधारों को आगे बढाया गया है। इन उपन्यासकारों ने समाज के सामने नयी विचारधारा रखने का भी प्रयास किया है, प्रत्येक युग की समस्या भिन्न-भिन्न होती है, उसी का चित्रण दिखाई देता है। भारतीय समाज में आधुनिकता के कारण नये मूल्यो का निर्माण हो रहा था तथा नयी संस्कृति का भी आगमन भी हो रहा था। ऐसी विषम परिस्थिति में समाज दिखाई दे रहा था। एक ओर प्राचीन पंरपरा उनके सामने थी तो दुसरी ओर आधुनिक जीवन शैली के बीच समन्वय स्थापन करने का प्रयास उपन्यासकार कर रहे थे। आधुनिक जीवन शैली के परिणाम स्वरूप मनुष्य के जीवन में अनेक परिवर्तन हो रहे थे, उस का भी चित्रण यहाँ हुआ है। अनेक समस्या मनुष्य के सामने खडी हो रही थी, जीवन के बदलते संदर्भ दिखाई दे रहे थे, इसी बीच समाज का निम्नवर्ग अपने जीवन में त्रासदी को लेकर चल रहा था। चिंतित मनुष्य के जीवन संदर्भों के विविधमुखी आयामों को साँतवे दशक के उपन्यासकारो ने अभिव्यक्त किया है। आठवे दशक में समकालीन दौर की शुरूआत मानी जाती है। आनेवाला दशक अपने युग का चित्रण करता है। यहाँ उपन्यासकारो ने समाज के भीतर के वास्तविक रूप को ही चित्रित करने का प्रयास किया है। साहित्य समय का प्रहरी होता है, हिंदी साहित्य में अब विमर्श के नये नये क्षितिज खुल रहे थे। साहित्य की सभी विधाओंपर लेखन शुरू हो रहा था। अंतिम दशक तक आते-आते उपन्यास विधाने मानव जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नही छोडा जिसकी ओर उंगलिनिर्देश किया जा सके। यहाँ दिखाई देता है सभी क्षेत्रों में कलम चलाई गयी है। इसलिए केंद्र में 'स्वंतत्रता' को रखा गया है, ताकि उसके बाद साहित्य में आए परिवर्तन को हम समझ सकते है। समाज के भीतर जब कोई बदलाव आता है, उसका परिणाम मनुष्य के जीवन संदर्भों के साथ

जोडा जाता है, मनुष्य के जीवन को नये क्षितिज की ओर ले जाता है, साथ ही अनेक मानव जीवन की समस्याओं को भी सामने रखता है। प्रत्येक दशक का जीवन दर्शन हमारे सामने आता है। उपन्यासकार अपने उपन्यासके माध्यम से भविष्य के लिए सचेत करता हुआ भावी पिढी के लिए सुरक्षित भविष्य के दायित्व को निभाता हुआ समाज में नया सवेरा निर्माण करना चाहता है। यह शोध लिया गया कि दलित जीवन की त्रासदी का उपन्यास के विकासक्रम में स्वंतत्रता पूर्व से लेकर अंतिम दशक तक संक्षिप्त रूप में अवलोकन किया गया है। इसे देखते समय निष्कर्ष के रूप में कह सकते है, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बहुत सी दलित जातियो का जीवन स्तर बदला और कुछ आज भी घुटन भरी जिंदगी जी रहे है। उनके जीवन में कहीं भी किसी प्रकार का प्रकाश नहीं है, केवल जीवन एक बोझ बनकर रह गया हैं। दलित जातियों के जितने आय के स्त्रोत हैं, वह समस्त सवर्ण एवं भ्रष्ट लोगो के हाथ से गुजरते हैं। उन्हें मात्र केवल कुछ थोडा सा अंश ही मिलता है, जिससे कि वह अपने परिवार की मूलभुत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें, परन्तु वह भी समय से प्राप्त नही होता है या उसमें भी कुछ हिस्सा काट लिया जाता है और त्रासदीमय जीवन दलित वर्ग जीता है। यह भी उल्लेखनीय है कि स्वयं उपन्यासकार ही दलित वर्ग का सदस्य होने के कारण उनकी रचनाओं में दलित जीवन के अन्तर्बाह्य रूपों का बडा जीवंत और प्रामाणिक चित्रण हुआ हैं।

भगवान बुद्ध ने ब्राह्मणवाद से लोहा लिया था। वेदशास्त्रों को धर्म के रूप में अपनाने का विरोध किया था। वर्णवादी गुलामी को तोडने का प्रयास किया गया है। समाज के भीतर की विषमता को दूर करने का प्रयास कबीर, रैदास आदि कवियों ने दलित जीवन की पृष्ठभूमि का आधार लेकर ही अपनी रचनाओं में किया है। उनका लक्ष्य यह समता मूलक समाज की स्थापना के लिए ही है। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले का आगमन दलित आन्दोलन के लिए युगान्तकारी परिवर्तन का द्योतक था। ज्योतिबा फुले ने केवल कठोर शब्दो में नही बल्कि साहित्य लिखकर और उसे जीवन में उतारकर साहित्य को एक दिशा प्रदान की है। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर दलितो के मसीहा है। अछूत जीवन को स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने भोगा था, इसलिए उन्होंने अपना जीवन उन लोगो के लिए समर्पित किया जो उपेक्षित जीवन जीते है। जिन्हे आत्मसम्मान विरहीत पराधिनता में जीवन जीना पडता है ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व उन्होने किया है। इन सभी को एकत्रित लेकर बौद्ध धर्म का स्विकार

करते है। गौतम बुद्ध ने मानवता और समानता का संदेश दिया है। दुःखो को दूर करना उनका अष्टांग मार्ग है।

दलित विमर्श यह एक व्यापक संकल्पना है। दलित वह है, जिसका दलन किया गया है शोषण किया गया, उत्पीडन किया गया। उपेक्षित, अपमानित, प्रताडित, बाधित, और पिडित व्यक्ति भी दलित की क्षेणी में आते हैं। इस तरह दलित शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत जहाँ सदियों से सामाजिक वर्ण व्यवस्था और जातिवाद से अभिशप्त दलित, शोषित, उपेक्षित व उत्पीडित व्यक्ति आते है। भूमिहीन, अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित, निराश्रित भी दलित ही है। यह संकल्पना व्यापक है, इसे विविध विद्वानो के द्वारा दी गई परिभाषाओं से देखा गया है। साथ ही दलित किसे कहा जाय? दलित साहित्य से क्या तात्पर्य है? दलित साहित्य के अंतर्गत किन-किन विषयों को प्रमुखता दी जाय? ऐसे अनेक सवाल और उनके जवाब हमें विभिन्न विद्वानों के द्वारा दी गई परिभाषाओं से मिलते हैं। दलित साहित्य ने मराठी भाषा को नई उर्जा दी है। आज हम देखते है कि दलित साहित्य एक आंदोलन के रूप में १९६० के आसपास मराठी भाषा में आंरभ हुआ तथा मराठी के दलित साहित्यिक आंदोलन ने अन्य भारतीय भाषाओं को प्रभावित किया। लेकिन सही मात्रा में दलित साहित्य की गुँज १९८० के बाद साहित्य में दिखाई देने लगी थी, इसके पहले भी 'दलित' को लेकर लिखा गया किंन्तु सहीमात्रा में वेदना इसके बाद ही दिखाई देती हैं। यह साहित्य का एक सशक्त सामाजिक आंदोलन है। इस साहित्य का प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी होता है, हिंदी में भी दलित चेतना को लेकर लिखा गया है।

दलित साहित्य वेदना का साहित्य है। दलित साहित्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य केंद्र में रखकर जब हम देखते है तो हमारे सामने वर्णविभाजन का वह काल आता है। समाज के भीतर के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह चार वर्ण, इनके कामो का विभाजन हमारे सामने आता है। लेकिन इन सब में शूद्र का संपूर्ण जीवन यह उपर के तीन वर्गो की सेवाकार्य में ही समाप्त होता है। शूद्रों का जीवन यह यातनामय और कठिन हो गया है। आज हम देखते है, कि समाज के भीतर का उच्चवर्ग (पूँजीपति) अपना विलासी जीवन जीता है, लेकिन समाज का गरीब (निम्नवर्ग) यह उच्चवर्ग की सेवा मजबूरी में करता है। एक वर्ग का सदियों से शोषण हो रहा है, वह आज 'दलित वर्ग' है। इन सब तथ्यों का विवेचन इस

अध्याय में किया गया हैं।

स्त्री से वेश्या बनने के बाद समाज में उसे कैसे सबकुछ सहना पडता है, उनकी समस्याओं को दर्शाया है। अजय नावरिया का 'उधर के लोग' उपन्यास दलित जीवन की समस्याओं को दर्शाता है। गांव का ग्राम प्रधान सत्यनारायण त्रिपाठी कैसे पुरे गाँव को अपने कब्जे में करता है, साथ ही निम्नवर्ग के अज्ञान का फायदा उठाकर गाँव को लुटता है। विविध सरकारी योजनाओं को सामान्य जनता तक नही जाने देता। सत्यनारायन त्रिपाठी गाँव का शोषण करता है। भ्रष्टाचार की समस्या को यहाँ दर्शाया गया है। दलित जीवन समस्याओं की गाथा है। समस्या सुलझाने के कारण मानवी जीवन विकसीत होता है साथ ही साथ ये समस्याएँ शोषण का आयाम भी बनती है। दलित जीवन की समस्याओं को केन्द्र में रखकर लिखे गये उपन्यासों में समता, न्याय, लोकतंत्र, बंधुता और विज्ञान सम्मत बातों का पक्ष है। साथ ही इसमें भाग्य, भगवान, पुनर्जन्म, कर्मकाण्ड, पाखण्ड की अवधारणा को नकार दिया है। समाज के सामने उच्च आदर्शो को रखनाही इन उपन्यासकारों का लक्ष्य है, उनकी सारी कृतियाँ इस तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत करती है। अपने जीवन को एक संघर्ष मानकर जी रहे है। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि मनुष्य जीवन में 'संघर्ष' प्राणतत्व के रूप में अनन्यसाधारण महत्व रखता है। कठिन परिस्थितियों में सामना करना ही संघर्ष है। प्रतिकूल परिस्थितियो में जीवन व्यापन अन्याय, अत्याचार का विरोध करना तथा विभिन्न कठिनाईयों का सामना करना और जीवित रहना ही संघर्ष है। यह पात्र जीवन में संघर्ष करते-करते यशस्वी होते है, आनेवाली पिढी के लिए यह महत्वपूर्ण है। उपन्यासों के पात्र दलित होते हुए भी अपने स्वकर्तृत्व पर अपना जीवन सफल करते हैं। दलित पात्रो की अपनी सीमा होते हुए भी संघर्षशील व्यक्तित्व के कारण आलोच्य उपन्यासों के पात्र सामाजिक क्रांति के नायक ही है, ऐसा मुझे लगता है।

जीवन एक संघर्ष है, लेकिन निम्नवर्ग के लिए जीवन संघर्ष भी है और कटू यातना भी। संघर्ष करने के बाद कुछ प्राप्त भी हो जाता है, तो भी वह दलित है, इस दृष्टि से उसकी ओर देखा जाता है। उसकी कामयाबी को नही देखा जाता है, प्रस्तुत उपन्यासों में जीतने भी पात्र हमारे सामने आते है वह सभी संघर्ष तो करते है, लेकिन एक मुकाम पर आने के बाद वे भी हतबल हो जाते है। उनकी इच्छा आंकाक्षा भी समाप्त होती है। दलित वर्ग संघर्ष इसलिए करता है कि वह

मानवतावादी जीवन को जीना चाहता है। दलित वर्ग अब डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों से प्रभावित होने के कारण शिक्षा के क्षेत्र से जुड गए है, लेकिन आज भी बहोत वर्ग यह इस से दूर दिखाई देता है, आज भी दलित वर्ग उपेक्षित जीवन जी रहा हैं।

शोध उपलब्धियाँ

१) जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था के कारण दलितों का जीवन पशूवत हो गया है उसमे सुधार लाना है।

२) हिंदी उपन्यासों में दलित नायकों में संघर्ष–चेतना अधिक मात्रा में उजागर हुई हैं। ये नायक संघर्ष को ही अपना शस्त्र मानते हैं और अन्याय अत्याचार एवं न्याय की लडाई लडतें हैं।

३) इस दशक के उपन्यासों में महानगरीय परिवेश बिगडा, जन संघर्षमयी, तनावपूर्ण, भ्रष्टाचार से ओतप्रोत, बैचेन मानसिकता से परिपूर्ण लगता हैं।

४) समस्याएँ और समाधान का आपस में गठबंधन जारी है। दलितों के जीवन में बहुत सी समस्याएँ आई, जो सामाजिक एवं प्राकृतिक हैं।

५) दलित समाज की स्थिति को सुदृढ एंव उत्कृष्ट बनाने के लिए बहुत से सरकारी गैरसरकारी संगठन कार्यरत है जिससे संपूर्ण समाज का संवैधानिक विकास हो सकता है,किन्तू भ्रष्टाचार के कारण योजनाएँ इस वर्ग तक नही पहुँच पा रही हैं।

६) आज का दलित वर्ग सामाजिक न्याय की लडाई के साथ साथ अपने अस्तित्व एवं स्वाभिमान की लडाई लड रहा हैं। आज वह अपनी स्थिति को पहचान गया है तथा अपने अधिकारों को पाने के लिए सचेत हो गया है।

७) भारतीय संविधान की रचना के माध्यम से डॉ. अम्बेडकरजी का सामाजिक न्याय की स्थापना में बहुत बडा योगदान है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

१. राजेश शर्मा – आधुनिक हिंदी निंबध

२. डॉ. सुरेश बन्ना – 'हिंदी उपन्यास बदलते परिप्रेक्ष्य

३. क्षेमचंद्र सुमन – योगेन्द्रकुमार मलिक : साहित्य विवेचन

४. रामदरश मिश्र – हिंदी उपन्यास : एक अन्तयांत्रा

५. बच्चनसिंह – हिंदी साहित्य का दुसरा इतिहास

६. राल्फ फोक्स – 'द नावेल एण्ड द वीपूल

७. डॉ. इन्द्रनाथ मदान – प्रेमचंद चिंतन और कला

८. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम

९. प्रेमचंद, गोदान

१०. डॉ. कुँवरपाल सिंह – हिंदी उपन्यास – सामाजिक चेतना

११. डॉ. सुरेश सिंन्हा – हिंदी उपन्यास

१२. डॉ. रांगेय राघव – 'कब तक पुकारू'

१३. 'हंस' सम्पादकीय – नवम्बर – दिसंबर १९९७

१४. आचार्य चतुरसेन शास्त्री – उदयास्त

१५. डॉ. रांगेय राघव – 'कब तक पुकारू' – आमूख

१६. कुँवर कृष्णकुमार सिंह – पिले पत्ते

१७. डॉ. सुमित्रा त्यागी – स्वांतत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में जीवन दर्शन

१८. श्री तेजसिंह 'हंस' जनवरी २००१

१९. डॉ. मधुकर 'उग्र का कथा साहित्य'

२०. सुष्मा धवन – हिंदी उपन्यास

२१. नागार्जुन – 'बलचमा'

२२. डॉ. कुँवरपाल सिंह – हिंदी उपन्यास – सामाजिक चेतना

२३. फणिश्वर नाथ 'रेणू' – मैला आँचल'

२४. रामदरश मिश्र – हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा

२५. फणिश्वर नाथ 'रेणू' – मैला आँचल

२६. उदयशंकर भट्ट – सागर लहरे और मनुष्य

२७. नागार्जुन – वरूण के बेटे

२८. ज्ञानचंद गुप्त – आँचलिक उपन्यास

२९. फणीश्वरनाथ रेणू – परती परिकथा

३०. यादवेंन्द्र शर्मा चंद्र – पत्थर के आँसू

३१. भगवतीचरण शर्मा – सीधी सच्ची बाते

३२. शिवप्रसाद सिंह 'अलग अलग वैतरणी'

३३. डॉ. रामदरश मिश्र – 'जल टूटता हुआ'

३४. डॉ. ज्ञानचंद्र गुप्त – आँचलिक उपन्यास – संवेदना और शिल्प

३५. रामदरश मिश्र – 'सुखता हुआ तालाब'

३६. जगदीशचंद्र 'धरती धन न अपना'

३७. मुन्ना तिवारी – दलित चेतना और समकालीन हिंदी उपन्यास

३८. जगदीशचंद्र – 'धरती धन ना अपना'

३९. डॉ. बद्रीप्रसाद 'प्रगतिवादी हिंदी उपन्यास'

४०. संपादक – वि. स. विद्यालकार – 'प्रकर' (मार्च १९७५)

४१. गोपालराय – हिंदी उपन्यास का इतिहास

४२. अमृतलाल नागर – नाच्यो बहुत गोपाल

४३. गोपालराय – हिंदी उपन्यास का इतिहास

४४. यादवेंन्द्र शर्मा – हजारों घोंडो का सवार

४५. डॉ. आरीगपुडि – अभिशाप

४६. बाला दुबे – 'मकान दर मकान'

४७. अब्दुल बिस्मिल्लाह – झीनी झीनी बीनी चदरिया

४८. सं. गोपालराय – 'समीक्षा पत्रिका' अक्तू–दिसंबर १९८७

४९. मुन्ना तिवारी – दलित चेतना और रामकालीन हिंदी उपन्यास

५०. जयप्रकाश कर्दम – छप्पर

५१. सत्यप्रकाश – जस तस भई सवेरे

५२. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी – दलित अस्मिता और हिंदी उपन्यास

५३. मोहनदास नैमिशराय – मुक्तिपर्व (मेरी बात)

***